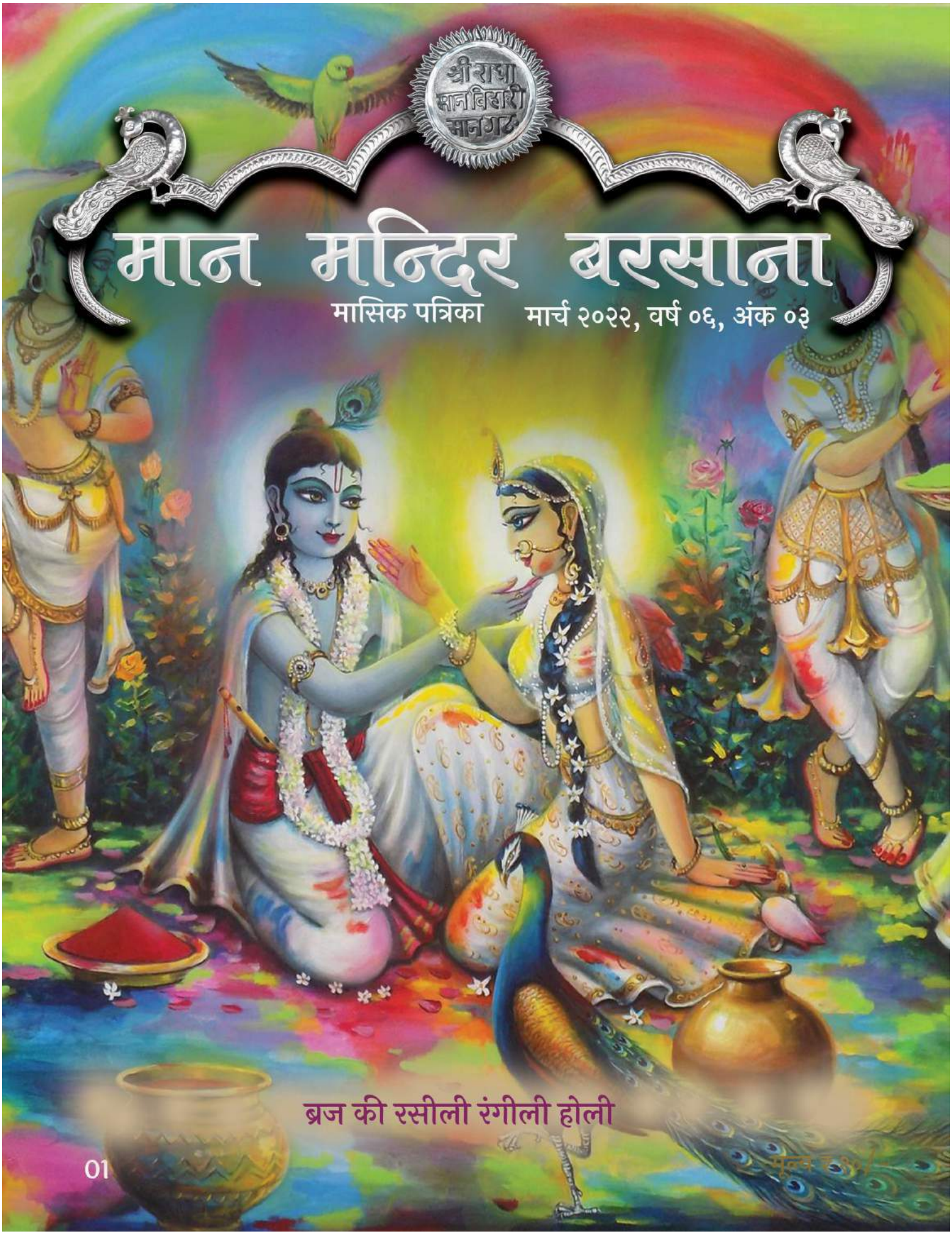

मान मन्दिर बरसाना

मासिक पत्रिका मार्च २०२२, वर्ष ०६, अंक ०३

ब्रज की रसीली रंगीली होली

मूल्य ₹30/-

श्री पंडित जी डॉ रामजीलाल शास्त्री जी द्वारा, कामा, राजस्थान में 34 वीं भागवत कथा

जुरहरा गांव (भरतपुर, राज.) कथा

श्याम गढ़ मध्य प्रदेश में पूज्या व्यास साध्वी श्री मुरलिका जी द्वारा श्रीमद्भागवत कथा

अनुक्रमणिका

विषय– सूची **पृष्ठ– संख्या**

१ श्रीबरसाने' से ही रंगीली–होरी का शुभारम्भ···...०५
२ परमाद्भुत प्रेममयी 'श्रीगह्वर–वाटिका'.....०८
३ 'श्रीगह्वरवन' से सुशोभित 'श्रीवृषभानुपुर'.....,,....११
४ श्रीगह्वरवननिष्ठ रसिकाचार्य 'श्रीवंशीअलीजी' १४
५ श्रीकृष्णरसगानमय ही वास्तविक ब्रज.....१६
६ विराहात्मक भावाराधन से प्रेमोदय.....१९
७ सर्वोत्तम साधन 'संकीर्तन'.....२२
८ असली आनन्दप्रदायिनी 'आराधना'.....२४
९ महारास का स्वरूप.....२७
१० सुमंगल की पहिचान 'गौ–संवृद्धि'.....३०
११ परम लाभ 'रसिकों का सानिध्य'.....३३

लाड़िली अद्भुत नजारा
तेरे बरसाने में है |
बेसहारों का सहारा
तेरे बरसाने में है ||

***हर लता हर डाल पर तेरी दया की है झलक,**
पर अनौखी प्रेम धारा तेरे बरसाने में है |
***मन की सब दुश्वारियों को दूर करने के लिए,**
कुण्ड गह्वर का किनारा तेरे बरसाने में है ||
***झांकियाँ तेरे भवन की कर रहे सब देवगण,**
आ गया वैकुण्ठ सारा तेरे बरसाने में है |
***यूँ तो सारे ही ब्रज में तेरी दया की है नजर,**
हर घड़ी यशुमति दुलारा तेरे बरसाने में है ||

–ब्रजनिष्ठ संत श्री "दयाजी" कृत 'पद'

होरी आई री
बिरज में होरी आई री ||
गैल गिरारे होरी है रही घर घर छाई री ||
अपनी अपनी जोट लाग ते सब कोई खेलैं फाग
बड़ौ अनोखौ नन्द महर को जोट न देखै लाग |
कोई खेलै छिरका छिरकी पिचकारी लै मार,
मोहन ऐसी होरी खेलै गागर सिर पै ढार |
रंग–रंग के लियो गुलालन मूठ मूठ रहे मार,
नन्द को ऐसो भायौ खिलारी भर–भर पोटैं मार |
कोई उझकै सैन चलावै घूँघट देय उघार,
नन्द को ऐसो है मदमातौ चोली देवै फार |
कोई छांडै हरो गुलाबी रंग बैजंती लाल,
श्याम रंग में भीतर बाहर रंग दीनी गोपाल |
सबै रंग मिट जावैं होरी के धोये एक बार
श्याम रंग दिन दूनो निखरै धोऔ बार हजार ||

— पूज्यश्री बाबा महाराज कृत 'पद'

संरक्षक– **श्रीराधामानबिहारीलाल**

प्रकाशक – **राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)**

mob. राधाकांत शास्त्री 9927338666
ब्रजकिशोरदास.....6396322922

(Website :www.maanmandir.org)

(E–mail :info@maanmandir.org)

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८:०० से ९:०० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६·०० से ७·३० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –

"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ–सेवा–यज्ञ में भाग ले |"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकाले व मासिक, त्रेमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवा द्रव्य किसी विश्वसनीय गौ सेवा प्रकल्प को दान कर गौ–रक्षा कार्य में सहभागी बन अनंत पुण्य का लाभ लें | हिन्दू शास्त्रों में अंश मात्र गौ सेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया

विशेष:– इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्–कृपा के पात्र बनें | हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ | जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि || (श्रीमद्भागवत३/७/४१)

अर्थ:– भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म–मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकता |

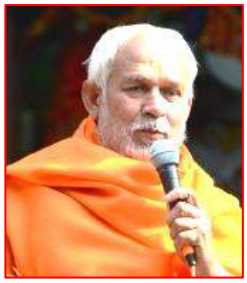

प्रकाशकीय

"जो रस बरस रह्यो बरसाने, सो रस तीन लोक में नाँहि।"

विविध रंगों में रँगी 'ब्रजभूमि' न केवल अपने को अपितु सम्पूर्ण सृष्टि को आलोकित करती हुई, सबके अन्तःकरण को भी रसमय कर रही है क्योंकि आजकल होली का महोत्सव 'ब्रज' में चल रहा है। **'जग होरी ब्रज होरा'** आदि रचनाएँ स्पष्ट करती हैं कि यहाँ का यह रंगोत्सव बड़ा ही अद्भुत, अनौखा और बड़ा ही मनोरम होता है। बसन्त के पश्चात् ४० दिन पर्यन्त चलने वाले इस उत्सव के लिए न केवल जगत के जीव अपितु सम्पूर्ण ऋषि–मुनि, देवगण भी लालायित होते होंगे। ब्रज में भी 'बरसाना' जहाँ दिव्यातिदिव्य रस की सतत वर्षा हुआ करती है, यही कारण है कि इसका नाम 'बरसाना' है। 'बरसाना' में भी 'मानिनी का मानभवन' अपनी उज्ज्वल कान्ति से परात्पर 'परब्रह्म' को आह्लादित करता होगा क्योंकि नित्याराधन में ब्रजबालाओं के नृत्य और होली–गायन में अवश्य ही उनकी उपस्थिति होती होगी, क्योंकि स्वयं श्रीभगवान् ने नारदजी से कहा है –

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदयेन च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥ (पद्मपुराण)

रससागर संत–सुहृद **पद्मश्री श्रीबाबामहाराज** की पावन सन्निधि में होने वाले क्रिया–कलापों का रंग आपको भी सरसता का अनुभव कराए, इस आशा से मानमंदिर बरसाना के 'मासिक–प्रकाशन' के माध्यम से सेवाभाव से आपका – प्रकाशक ...।

प्रबन्धक
राधाकान्त शास्त्री
श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

'श्रीबरसाने' से ही रंगीली–होरी का शुभारम्भ

श्रीराधारसवर्षा से अति आकर्षित होकर बड़े–बड़े देवगण, भक्तजन आदि यहाँ वृषभानुपुरी में आते हैं, तभी तो इसका नाम **'बरसाना'** है। यहाँ फाल्गुन शुक्ल नवमी को लट्ठमार होरी होती है, जिसमें बरसाने की गोपियाँ, नन्दगाँव के ग्वालों पर लट्ठ से प्रहार करती हैं और वे रोकते हैं। रसिकों ने श्रीकृष्ण की गौरवपूर्ण हार का वर्णन करके बड़े शान के साथ उनके भागने का भी उल्लेख किया है। 'माधवदासजी' की प्रसिद्ध धमार –

हो–हो बोलत डोलत मोहन खेलत होरी।
बंस लिये गोपी हाथ भरे रंग भाजन फोरी।
मार परी मुरी आय टिके ब्रजराज की पौरी॥

यहाँ लट्ठमार में बाँस या लट्ठ की परम्परा क्यों रखी गयी है? इसके कई कारण हैं। जैसे – नायक की अधिक चपलता को रोकने के लिए लकुट ही काम आती है और गोपीजनों के लट्ठ–प्रहार को 'ग्वालवाल' ढालों के द्वारा बचाते हैं रसमय हास–परिहास करते हुए।

श्रीविट्ठलदासजी की प्रसिद्ध धमार –

ब्रज में होरी रंग बढ्यौ हो।
तब नन्दनन्दन फगुआ देन मिस प्यारी सन्मुख आय॥
मृगमद केसर और अरगजा भीजे उर लपटाय।
तब सकुची गोपी सब कनक लकुट लै हाथ॥
पकरन धाईं छबीले लाल को खसत झीने पटभात।
भागे सकल सखा संग के तब मोहन लीने घेर॥
अछन उठा गयी ले पिय को फिर चितवत मुख फेर।

इस प्रसंग में नायक की हार ही रसवृद्धि का कारण होती है, यह भी लट्ठ का एक मुख्य कारण है। श्रीकृष्ण 'श्रीजी' के लिये हार बनाकर ले जाते हैं, हार के बदले वे पराजय का हार देकर इनका रस–गौरव बढ़ाती हैं।

श्रीश्यामदासजी की प्रसिद्ध धमार है –

खेलो होरी फाग सबे मिलि झूमक गावो॥
संग सखा खेलन चले वृषभान गोप की पौरी।
श्रवन सुनत सब गोपिका गईहें कुंवरी पें दौरी॥
मोहन राधा कारनें गुहि लीन नोसर हार।
हार हेत दरसन भयो सब ग्वालन कियो जुहार॥
राधा ललिता सों कह्यो नेक हार हाथ तें लेहु।
चंद्रभगा सों यों कह्यो नेंक इनहीं बेठन देहु॥
बहोत भांति बीरा दिये कीनो बहोत सन्मान।
राधा मुख निरखत हरि मानो मधुप करत मधुपान॥
मोहन कर पि चकाई लीये बंस लीये ब्रजनार।
जीती राधा गोपिका सब ग्वालन मानीहार॥

यही होरी दशमी को नन्दगाँव में भी होती है।

जब ग्वालबाल नन्दगाँव से पीलीपोखर आते हैं और आपस में कहते हैं –

"बरसाने चलो खेलें होरी"

चलो बरसाने...क्यों? क्योंकि वहाँ लाला 'राधारानी' के साथ बसते हैं। जब बरसाने पहुँच जाते हैं तो श्रीराधारानी से बोलते हैं कि हे राधे ! हमें दर्शन दो।

"दरसन दे निकस अटा में ते ..."

राधारानी से प्रार्थना किया, श्रीजी महल के बाहर आकर खड़ी हो गयीं। नीचे नन्दलाल खड़े हैं। अब राधारानी कैसे खड़ी हैं महल में और कैसे दर्शन दे रही हैं, वह छवि देखो – श्यामसुन्दर की पिचकारी का रंग जब ऊपर महल तक नहीं पहुँचा तो प्रेम की मार कर रहे हैं, ऊपर प्रीति भेज रहे हैं।

बरसाना में 'रंगीली होरी' ५००० वर्ष से भी अधिक पुरानी है और इसका प्रमाण 'गर्ग संहिता' में है। ब्रज में नौ उपनन्द थे, जो सभी गुणों से युक्त व धनवान–शीलवान थे; इनके घर में देवों के वरदान से गोप–कन्यायें उत्पन्न हुई, वे सभी राधारानी की सखियाँ अनुचरी थीं। एक समय बसंत ऋतु आयी, सभी ने होरी का उत्सव प्रारम्भ करना चाहा परन्तु होरी–उत्सव प्रारम्भ कैसे हो, श्रीजी तो 'मानलीला' में हैं। सब सखियाँ 'श्रीजी' के पास जाती हैं और कहती हैं कि हे राधारानी ! हे चन्द्रबदने ! हे मधुमान करने वाली मानिनी ! हमारी बात सुनो, यह होरी का उत्सव है ! इस उत्सव

को मनाने के लिये तुम्हारे कुल में ब्रज के भूषण नीलमणि नन्दलाल आये हुए हैं। श्यामसुन्दर की ऐसी शोभा है – **"श्रीयौवनोन्मद विघूर्णित .... स्वपदारुणेन"**

(गर्गसंहिता, माधुर्यखण्ड .१२/८)

"हे राधे ! यौवन की शोभा से ब्रजराज के नेत्र मद से झूम रहे हैं; घुंघराली, काली–काली लटूरियाँ उनके गोल–गोल कपोलों पर लटक रहीं हैं और उनकी लटूरियों की, उनके केशों की जो छटा है, उसका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता, पीला जामा बड़ा घेरदार है और पाँवों में नूपुर छम–छम बज रहे हैं; बरसाने की ओर से वे चले आ रहे हैं। यशोदाजी के द्वारा धारण कराया गया मुकुट सूर्य की तरह प्रकाशमान हो रहा है। कुण्डल ऐसे चमक रहे हैं जैसे बिजली चमक रही हो। उनके गले में बनमाला ऐसी लगती है जैसे बादल बिजली के साथ आ गए हों। उनका सारा शरीर लाल रंग से रंगा हुआ है और उनके हाथ में पिचकारी है। हे राधे ! वे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" इस होरी को नन्ददासजी ने इस तरह से गाया है – राधारानी से सखियाँ कहती हैं कि हे राधे ! आज के दिन आप मान क्यों करती हैं? मान छोड़कर चलिये होरी के मैदान में – **"अरी चल नवल किशोरी गोरी भोरी होरी खेलन जाँहि"**

(श्रृंगाररससागर)

कैसी सुन्दर चाँदनी रात है ! ऐसे में आपको कैसे घर में बैठना अच्छा लगता है? हे राधे ! वहाँ हर गाँव के गोपी–ग्वालों के टोल जुड़ रहे हैं।

उधर श्यामसुन्दर आये और उन्होंने देखा कि कोटि–कोटि गोपियाँ हैं किन्तु उनकी आँखें जिसे ढूँढ़ रही थीं, वे राधारानी वहाँ नहीं हैं। श्यामसुन्दर ने चारों ओर देखा पर श्रीजी नहीं थीं, नेत्र नीचे करके उदास हो गये। करोड़ों गोपियाँ हैं पर 'राधारानी' नहीं हैं। श्यामसुन्दर ने विशाखाजी को आँखों से पूछा कि 'श्रीजी' कहाँ हैं ? विशाखा ने कहा – "श्रीजी नहीं आई", संकेत कर दिया कि अभी जाओ, तो विशाखाजी जाकर श्रीजी से बोलीं..."अब आप देर मत करो। बरसाने में श्यामसुन्दर बन–ठन के आये हैं, अब तुम चलो।" श्रीजी मुस्करा गयीं तो विशाखाजी समझ गयीं कि लाड़लीजी मान गयी हैं। विशाखाजी ने बाँह पकड़ कर उठा लिया कि अब चलो और श्रीजी का श्रृंगार किया। श्रीजी जब चलीं तो ऐसे चल रही हैं कि कमर में लचक आ रही है, उनका रूप ऐसे लगता है जैसे कि चमकती हुई ज्योति ...! जैसे हवा में दीपक की ज्योति छनछनाती है !! चलते समय एक लट श्रीजी के गालों पे लटक आयी है और वह लट लटककर गालों में जो नासिका का मोती है, उस मोती में उलझ गयी। श्रीनन्ददासजी कहते हैं कि जैसे कोई मछली फाँसने वाला पानी में काँटा डालता है तो काँटे के नीचे आटे की गोली लगा देता है और मछली उसमें फँस जाती है। वैसे ही श्रीजी की एक घुँघराली लट जो लटकी, वह तो काँटा थी, 'लट' मोती में उलझ गयी तो मोती आटे का चारा थी और मछली फँस गयी ! मछली क्या था ? श्यामसुन्दर का मन... ! चारों ओर सखियाँ और बीच में श्रीजी जा रही हैं तो ऐसा लगता है कि चारों ओर कुमुदनियाँ खिल रहीं हैं, एक चाँद जा रहा है, ये गौर चाँद 'राधारानी' हैं, ये चाँद आज पैदल जा रहा है। वहाँ पर अब खेल आरम्भ हुआ, पहले तो गुलाल से खेल हुआ। गुलाल के खेल के बीच में से श्यामसुन्दर ने श्रीजी को धोखे से पिचकारी मार दी तो श्रीजी ने मान कर लिया कि गुलाल से खेल हो रहा था, तुम जब हारने लगे तो बेइमानी क्यों की ? हुआ ये कि श्रीजी ने मान कर लिया और खेल रुक गया। यह तो बड़ा गड़बड़ हो गया, सारा रस ही चला गया। ललिताजी के पास मुकद्दमा गया कि इसका फैसला क्या होगा ? तो ललिताजी ने कहा कि आप जो चाहो वह दण्ड इनको दे दो, इन्होंने बेइमानी तो की ही है। बोलीं कि क्या दण्ड दिया जाये ? अब क्या दण्ड हुआ ये भी सुनिए – गुलाल का खेल तो बहुत हुआ। गुलाल के खेल में जब श्यामसुन्दर हारने लग गये तो उन्होंने सबकी दृष्टि बचाकर बेइमानी की और श्रीजी को पिचकारी मार दी। श्रीजी बहुत चतुर हैं, वे जानती हैं कि अगर ये हारेंगे तो कोई न कोई बेइमानी जरुर करेंगे तो जैसे ही उन्होंने पिचकारी मारी, श्रीजी ने बड़ी चतुरता से मुड़कर उस धार को बाँये हाथ से रोक दिया। मारी

तो थी श्याम सुन्दर ने कि सारा ऊपर से नीचे तक तर–बतर कर देंगे पर श्रीजी भी बड़ी खिलाड़ हैं। सारी धारा को अपने हाथ से रोक दिया पर फिर भी कुछ छींटे उनके गौर कपोलों पर आकर लग गये तो वह इतना अच्छा लग रहा था कि आप लोगों को हम क्या उपमा दें? जैसे अमरुद पर लाल–लाल छीटें जब पड़ जाते हैं तो बहुत अच्छे लगते हैं। वह इतनी अच्छी लगीं कि श्याम सुन्दर का होरी का खेल रुक गया और श्रीजी के पास आकर वह उन छींटों को देखने लग गये; ऐसी शोभा हुई उनकी कि खेल ही रुक गया। श्यामसुन्दर समझ गये कि श्रीजी जरूर मान में हैं। बोले कि चलो फिर से खेलें। जब श्यामसुन्दर विनती करते हैं तो श्रीजी बोलीं कि – जाओ, तुम बेइमान हो। सब सखियाँ इकट्ठी हो गयीं और मुकद्दमा पुनः ललिताजी के पास गया। ललिताजी ने कहा कि – इन्हें हम यह दण्ड देती हैं कि इनकी आँखों में काजल लगा दिया जाए; होरी में यह बहुत बड़ा दण्ड है। होरी का काजल गाढ़ा पोता जाता है। बोलीं "मंजूर है दोनों को? " यह बदला रस भरा है। श्रीजी ने दोनों हाथों की उँगलियों में काजल लिया। एक उँगली से नहीं, दोनों उँगली से काजल लिया। एक हाथ से उनका हाथ पकड़ लिया कि कोई गड़बड़ न करें और दूसरे हाथ से काजल ले, उनके नेत्रों को देख रही हैं। वह भी देख रहे हैं कि जल्दी से काजल लगाएँ। जैसे ही वह काजल का हाथ लेकर जाती हैं तो वह गाल हटा देते हैं। झगड़ा बढ़ा, खींचातानी में श्रीजी ने अपनी बाँयी भुजा से उनको ऐसे कस लिया कि उनकी गर्दन हिल नहीं पायी और काजल लगा दिया।

यह लीला उसी दिन बरसाने में हुई। उसी के अंत में लिखते हैं कि श्रीकृष्ण को श्रीराधारानी के हाथों से जब काजल लग गया तो अपना पटका 'राधारानी' को भेंट करके अपने घर चले गये। जो हार जाता है, वह पटका भेंट करता है। यह 'गर्गसंहिता' में होरी की लीला वर्णित है। जब बरसाने वाली नन्दगाँव में जाती हैं होरी खेलने तब गोपियाँ कहती हैं –

दरसन दै मोर मुकट वारे दरसन दै।
चंदा–सूरज तेरो ध्यान धरत हैं, ध्यान धरे नौ लख तारे।
गल बैजन्ती माला सोहै, कानन में कुंडल वारे।

'रंगीली होरी' के बारे में लिखा है कि जब 'श्रीकृष्ण' बरसाने में होरी खेलने आते हैं, वह पूरे मद में होते हैं। क्या यह यौवन का मद है? बोले – "नहीं–नहीं, अपनी जवानी का मद नहीं है, कुछ और बात है।" यौवन है श्रीराधारानी पर और गर्व हो रहा है श्रीकृष्ण को?

"लाड़लो गोरी के गुण गरबीलो"

यह विचित्र रस है ! श्रीकृष्ण अपने मद भरे नेत्र घुमा रहे हैं, उनके गालों पर लटूरियाँ छा रही हैं, उनकी ऐसी शोभा है, जैसे कोई नयी चूनरी लेकर फरफराती चली आ रही है। ये अदा है ! इस अदा से वह अपने जामा को हिलाते हुए चले आ रहे हैं। चरणों से नूपुरों की छम–छम आवाज आ रही है। इस तरह से श्रीकृष्ण मुकुट पहने, बरसाने में होरी खेलने आये हैं –

कान्हा धरे रे मुकुट खेलैं होरी।
उतते आये कुंवर कन्हैया इतते राधा गोरी॥
फेंट गुलाल हाथ पिचकारी, मारत भर–भर झोरी।
'रसिक गोविन्द' अभिराम श्यामघन जुग जीवौ यहजोरी॥

एक और बहुत सुन्दर पद है, जिसमें श्रीकृष्ण की बारात नंदगाँव से बरसाने में होरी खेलने जा रही है। नन्दगाँव से जब श्यामसुन्दर बारात में चले हैं तो श्रीकृष्ण के साथ सब देवगण भी होरी का स्वांग बनाकर चल पड़े। उसमें ब्रह्माजी आये हैं, महादेवजी आये हैं, शुकदेवजी आये हैं, सनकादिक भी आये हैं। ये होरी–उत्सव परम्परा आज तक बरसाने में चलती आ रही है।

अगर हृदय में वासनाएँ हैं तो तुम्हारी 'कृष्ण' में मति कभी नहीं लगेगी, न स्वतः तुममें लगाने की ताकत है और न किसी के पास जाने से लगेगी क्योंकि तुम सांसारिक भोगों में डूब रहे हो। 'गृहव्रतानाम्' गृहव्रत क्या है? भोग, धन–सम्पत्ति, देहासक्ति, गृहासक्ति – यह सब गृहव्रत है; तो *भोग–पैसा चाहने वाले के मन में 'कृष्ण' कभी नहीं आएँगे,* चाहे वह कितनी भी कथा कह ले, मान–सम्मान चाहने वाले के हृदय में 'कृष्ण' नहीं हैं।

परमाद्भुत प्रेममयी 'श्रीगह्वर-वाटिका'

यत्र गहवरकं नाम वनं द्वन्द्वमनोहरम् ।
नित्यकेलि विलासेन निर्मितं राधया स्वयम् ॥

"जिस बरसाने में गह्वरवन है, जिसे श्रीराधा ने स्वयं अपने नित्य केलिविलासों से बनाया है।" इसीलिए यह स्थल नित्य विहार का माना गया है।

'नित्यविहार' का तात्पर्य – "जहाँ एक क्षण के लिए भी वियोग नहीं है।" स्वकीया एवं परकीया दोनों से यह भिन्न उपासना पद्धति है। स्वकीया में पितृगृह-गमन से वियोग का अनुभव होता है और परकीया में तो संयोग का अवसर भी कम ही मिलता है और वह भी अनेक बाधाओं के बाद; वहाँ बाधाओं को प्रेम की कसौटी या प्रेम की तीव्रता का मापदण्ड माना जाता है। स्वकीया वाले श्रीराधा के मायिक व कल्पित पति के नाम से ही अरुचि रखते हैं। वे परकीयत्व का किंचित् मात्र संस्कार भी अपनी अनन्यता में स्वीकार नहीं करते, इसीलिए श्रीगहवरवन में रसिकों ने वियोगशून्य नित्य मिलन की उपासना स्वानुभव से लिखी है। जिनमें युगल इतने सुकुमार हैं कि एक क्षण का भी वियोग असह्य है किन्तु वियोग के बिना संयोग पुष्ट नहीं होता है। यह भी एक सत्य है। इसलिए यहाँ अति सूक्ष्म विरह भी गाया गया है, वह 'विरह' मिलन की अवस्था में भी निरन्तर पिपासा बढ़ाता रहता है। यही प्रेम वैचित्री है –

योगे वियुक्तवन्मानि ललितैकाश्रयं स्वयम् ।
करुणाशक्तिसम्पूर्णं गौरं नीलं च गह्वरे ॥

(श्रीवृषभानुपुरशतक १२)

वियोज्यते वियुक्तं वा न कदापि वियोक्ष्यते ।
क्षणार्द्धसत्कोटियुगं युगलं तत्र गहवरे ॥

(श्रीवृषभानुपुरशतक ११)

अर्थात् – "जिस गहवर वन में, कोटि-कोटि युग भी, आधे क्षण के समान, नित्य संयोग में, प्रेम-पिपासा में व्यतीत हो जाते हैं। जैसे – श्रीराधासुधानिधि, जो श्रीराधा की अनेक लीलाओं का सागर है, जिसमें उनकी विविध छवियाँ स्वकीया-परकीया की प्रस्तुति की गयी हैं। यद्यपि साम्प्रदायिक आग्रह से सम्पूर्ण ग्रन्थ "श्रीराधासुधानिधि" को अपनी पद्धति में सीमित करने का प्रयास किया गया है किन्तु संतजन सभी पद्धतियों का सम्मान करके अपने आस्वादन में लग जाते हैं। खण्डन का बात-बतंगड़ 'नीरस कलुषित लोग' ही किया करते हैं। श्रीराधासुधानिधि में भी गहवरवन की मिलन-पद्धति की छवि का वर्णन आता है (रा.सु.नि.-२५३) अर्थात् – वियोग तो दूर रहा, वियोगाभास से ही कोटि-कोटि प्रलयाग्नि की ज्वाला, युगल को बाहर व भीतर अनुभव होने लग जाती है; ऐसा प्रगाढ़ प्रेम है, जहाँ अति सूक्ष्म विरह की कल्पना भी इतनी तीव्रतम पिपासा जगाती रहती है। इसीलिए अंक में स्थित, मिलित अवस्था में विरहानुभूति होने लग जाती है (रा.सु.नि.-१४६, १२६)। इसलिए वृन्दारण्य से तात्पर्य, पंच योजनात्मक वृंदावन से है, जिसमें श्रीगहवरवन भी आता है। दोनों पक्ष के टीकाकारों ने (रा.सु.नि.-७८) ईशता, ईशानि, शचि आदि की व्याख्या में लक्ष्मी, पार्वती, इन्द्राणी आदि को ग्रहण किया है, कहीं इन सबको 'श्रीजी' का अंश, और कहीं इनसे स्वतंत्र स्वामिनी के रूप में अर्थ किया है; इस प्रकार श्रीराधिका से ये सब सम्बद्धा होती हैं। चाहे अंश रूप से या आधीन रूप से, अंश-अंशिनी में कोई भेद नहीं है। जब हम इनको राधिकांश रूप में मान्यता देते हैं तो फिर राधालीला में उनके विभिन्न स्वरूपों से ही द्वेष क्यों है ? जबकि श्रीमद्भागवत में डंके की चोट पर कहा गया है –

"सर्वाः शरत् काव्यकथारसाश्रयाः"

(श्रीभागवतजी १०/३३/२६)

अर्थात् "युगल सरकार ने सभी रसों का आस्वादन किया, वहाँ स्वकीया (अपनी विवाहिता) या परकीया (दूसरे की विवाहिता) या नित्यदाम्पत्य (नित्यवधू) रस हो।" बरसाने के वन-उपवन के सरोवरों में निशंक भाव से 'श्रीजी' क्रीड़ा करती हैं; वन के भीतर 'श्रीराधासरोवर' उनकी 'बाल व श्रृंगार लीला' का एक स्थल है, यहाँ श्रीराधारानी अपनी सखियों के साथ

जल–क्रीड़ा करती थीं, जिससे इसका नाम 'राधासरोवर' हो गया; इस सरोवर के प्रार्थना–मन्त्र का भाव है कि बड़े–बड़े देवता भी 'राधासरोवर' आने पर कृतार्थ हो जाते हैं। यह त्रिलोकी को भी मुक्त करने की शक्ति रखता है, ऐसे रमणीय तीर्थ को हम नमस्कार करते हैं।" श्रीगह्वरवन में हुई श्रीराधिका की बाल व श्रृंगार लीलाएँ –

श्रीराधा अति मिठ बोलनी,
पुर उपबन बन खेलन डोलनि ।
कबहूँ सखिन संग लै भीर,
खेलन जांइ सरोवर तीर ॥

(ब्रज .प्रेमानन्द .सागर .नवम लहरी)

अथवा

कबहूं राधा चम्पक बरनी ।
गहवर झूलैं कौतिक करनी ॥

(ब्रज.प्रेमानन्द.सागर .दशम लहरी, चौ० ७२)

श्रीगह्वरवन की लीलाओं का गान सभी रसिकों ने किया है। जैसे – **"प्यारी जु आगैं चलि आगे चलि गहवर वन भीतर"** (केलिमाल ४६)

देखि सखी राधा पिय केलि ।
ये दोउ खोरि खिरक गिरि गहवर
विहरत कुंवर कंठ भुज मेलि ॥ (हित चतुरासी ४९)

भूलि परी गहवर वन में जहाँ सखी न कोउ साथ ।
सोहिलो सुख गहर गहवर भरयौ भाव अनन्त ।

(महावाणी सहेली, उत्साह सुख ४१/६४ तथा सोहिलो ३९में)

सदा वृंदावन सबकी आदि ।
गिरि गहवर वीथी रत रन में कालिन्दी सलिलादि ॥

(व्यास.वाणी.वृं.म.पद सं.४२)

एक दिन 'राधिकारानी' गहवरवन में खेल रहीं थीं और श्रीकृष्ण उनको ढूँढ़ते–ढूँढ़ते नन्दगाँव से चले।

जब यहाँ पहुँचते हैं तो ललिताजी कहती हैं –"हे नन्दलाल ! तुम यहाँ कैसे आये ? "

श्यामसुन्दर कहते हैं – "ललिताजी ! हम श्रीराधारानी के दर्शन के लिये आये हैं।" ललिताजी कहती हैं – "अभी तुमको दर्शन तो नहीं मिलेंगे क्योंकि किशोरीजी अभी महल से चली नहीं हैं।" जबकि वह चल चुकी थीं। ये हैं लाड़ली जी की सखियाँ, ये टेढ़े ठाकुर से टेढ़ेपन से ही बात किया करती हैं।

रसिकों ने ऐसा लिखा है –

हम हैं राधे जू के बल अभिमानी
टेड़े रहें मोहन रसिया सौं बोलत अटपट बाणी ।

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी)

ललिताजी बोलीं कि किशोरीजी तो अभी नहीं आ रही हैं, तब श्यामसुन्दर कहते हैं – "तुम लोगों ने हमारा नाम चोर रखा है, चोर से चोरी नहीं चलती और ललिताजी तुम समझ रही हो कि हम तुम्हारी चोरी समझ नहीं रहे।" ललिताजी पूछती हैं – "हमारी चोरी क्या है?" श्रीकृष्ण बोले कि **"देख सखी, राधा जू ! आवत !! "** अरे ! लाड़लीजी तो आ रही हैं।

ललिताजी बोलीं – "कैसे पता ?" कृष्ण बोले – "किशोरीजी जब आती हैं, तब उनके शरीर की महक चारों ओर फैल जाती है, यह सुगन्ध बता देती है कि वह आ रही हैं, तुम नहीं छिपा सकती हो 'राधिकारानी' को। अरे ! चाँद को कोई क्या हाथ से ढक सकता है? हम तुम्हारी चोरी जानते हैं।" वहाँ कहा गया है कि श्रीजी खेलती आ रही हैं अपनी सखियों के साथ। ये गहवरवन की वही कुंजें हैं, वही लताएँ हैं, वही स्वरूप है। गहवरवन में राधारानी जब कुंजों से होती हुई आ रही हैं तो उनके आँचल को हवा छूती हुई श्रीजी के अंग की सुगन्ध को लेकर के श्रीकृष्ण जहाँ हैं, वहाँ पहुँचती है। श्रीजी के अंग की सुगन्ध पाकर श्रीकृष्ण धन्य हो जाते हैं। किशोरीजी के अंग की सुगन्ध पाकर ही श्रीकृष्ण धन्य हो जाते हैं? "धन्य ही नहीं, धन्य–धन्य हो जाते हैं। धन्य–धन्य ही नहीं, अति धन्य हो जाते हैं श्रीकृष्ण। श्रीकृष्ण अति से भी अधिक धन्य, यानि कृतार्थ धन्य हो जाते हैं।" (रा.सु.नि.१) तात्पर्य कि "सब कुछ मिल गया, पूर्णब्रह्म की प्राप्ति हो गयी। जो पूर्ण ब्रह्म है, वह बरसाने में जाकर ही पूर्ण होता है।" यह गह्वरवन बहुत ही महत्वपूर्ण वन है क्योंकि ऐसा सौभाग्य किसी अन्य

ब्रज के वन को नहीं मिला, जो गहवरवन को मिला, इस वन को राधारानी ने अपने हाथों से सजाया है और इसमें दोनों 'राधा–कृष्ण' नित्य लीला करते हैं।

श्रीगहवरवन में ही "श्रीवल्लभाचार्यजी" की बैठक एवं शंख शिला स्थल है। यहाँ ग्वालबालों ने गोपालजी से शंख देखने की इच्छा प्रकट की, गोपाल जी ने शंख दिखाया और बजाकर इस शिला पर रख दिया, जिससे यह शिला ही शंखाकार हो गयी एवं माखन खाकर यहाँ हाथ पौंछे थे, जिससे यह शिला चिकनी हो गयी। 'आचार्यचरण श्रीवल्लभाचार्यजी' की १०८ बैठक जी में से एक बैठक गहवर वन में है, जहाँ आपने १०८ भागवत पाठ किये। जिस समय आप गहवर वन में पधारे तो बड़ा विचित्र दृश्य देखा। एक अजगर, जिसे लाखों चीटियाँ खा रही है, शिष्यों द्वारा पूछने पर कि यह कौन है? किस कारण से इस दुर्गति को प्राप्त है। आचार्य चरण ने बताया कि जो धर्मानुयायी संत महन्त दैवी द्रव्य का दुरूपयोग करते हैं, अपनी वासनाओं की पूर्ति में उसे लगाते हैं, उनकी यही दुर्गति होती है। "हरहि शिष्य धन शोक न हरही, ते गुरु घोर नरक में परही"। यह अजगर भी एक महन्त थे, जिन्होंने भगवत्सेवा के धन को अपनी वासनाओं में व्यय किया, उसीसे इनकी यह स्थिति हुई है और चींटियाँ जो इनको खा रही हैं ये इनके शिष्य थे। सभी को इस विषय में बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। परद्रव्य हरण, परद्रव्य पर दृष्टि, ये सब जघन्य पाप हैं। २५२ वैष्णव वार्ता में एक बड़ा सुन्दर प्रसंग मिलता है – श्रीगुसाँईविट्ठलनाथजी के परम कृपापात्र शिष्य थे, श्याम दास जी। एक बार एक लालदास नामक ब्राह्मण, गुसाँई जी के पास आये बोले – "महाराज ! मैं क्या करूँ? मेरा चित्त स्थिर नहीं रहता है।" गुसाँईजी – "तुम एक वर्ष श्याम दास की सेवा व सत्संग करो।" बस, लालदास जी ने श्यामदास जी की सेवा सत्संग आरम्भ कर दिया। एक दिन श्यामदास जी बोले – "मुझे परदेस जाना है।" लालदासजी बोले – "मैं भी चलूँगा, आपकी सेवा करूँगा।" यात्रा आरम्भ की, मार्ग में एक गाँव पड़ा, वहाँ एक वैष्णव के घर ५०० लोगों का विशाल भण्डारा था। आप दोनों भी वहाँ जब पहुँचे और पत्तल में प्रसाद पाने बैठे तो श्यामदास जी को वहाँ पत्तल में सैकड़ों कीड़े ही कीड़े दिखाई दिये, मानो उन्हें प्रभु की प्रेरणा हुई – "श्यामदास, तुम यह स्वीकार मत करना। यह द्रव्य कन्या विक्रय का है। अतः मैंने भी इसे अंगीकार नहीं किया है।" बस, श्यामदास जी तो वहाँ से उठकर चलते बने दूसरे ग्राम की ओर, परन्तु लाल दास नहीं उठे और विचार किया, अरे ! "श्यामदास अच्छा वैष्णव नहीं है, इतने लोग कह रहे हैं भोजन के लिए तो क्या जाता है भोजन करने में" इतने वैष्णवों की बात नहीं मानेगा तो अपराध लगेगा, लालदास ने वहीं बैठ कर भोजन किया, पर उस दिन से श्यामदास जी ने लाल दास से बात करना छोड़ दिया, लालदास सेवा तो करता रहा एक वर्ष तक पर श्याम दास जी ने बात नहीं की। एक वर्ष पश्चात् लालदास जी ने गुसाई जी से विनती की – "जै जै ! ये श्यामदास ने ५०० वैष्णवों की बात न मानी, महाप्रसाद नहीं लिया, अब आप ही बताओ, उचित क्या था? लेना या न लेना।" गुसाई जी बोले – "लालदास ! तुमने हमारी आज्ञा का भी उल्लंघन किया और श्यामदास वैष्णव की आज्ञा का भी, अरे ! हमने तुमसे कहा था, एक वर्ष तक तुम श्याम दास का सत्संग करो, इनकी सेवा करो। तुमने दोनों की आज्ञा टाल दी, तुमने उन ५०० वैष्णवों के कहने से जो प्रसाद ग्रहण किया, वह दूषित द्रव्य, कन्या विक्रयी का था, अतः वह ठाकुर जी के भोग योग्य नहीं था। अब तो तुम्हें एक वर्ष के स्थान पर दो वर्ष पर्यन्त श्यामदास जी की सेवा करनी होगी, तभी ठाकुर जी प्रसन्न होंगे।" दूषित द्रव्य स्वीकार करने का यह परिणाम है। अतः सर्वदा सावधान रहें, परद्रव्य व दूषित द्रव्य से, यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है।

हम लोग क्या त्याग कर सकते हैं ? 'आसक्ति' दुस्त्यज है अर्थात् छोड़ी नहीं जा सकती। त्याग 'आसक्ति' का होता है,

'श्रीगह्वरवन' से सुशोभित 'श्रीवृषभानुपुर'

श्रीवृषभानुपुर शतक का बाबाश्री द्वारा श्लोकार्थ (१३ फ़रवरी, २०२२)

जयत्यशेषाद्भुतमाधुरी सा, पुरी बृषाहस्कर्रराजकस्य ।
यन्नामश्रृण्वन्ननु नन्दसूनु, व्रजत्यवस्थां जडिमाभिधानाम् ॥ १ ॥

जयति – जय हो; किसकी जय हो, इस पुरी (वृषभानुपुरी) की जय हो । ग्रन्थकार श्रीवंशीअलीजीमहाराज ने धाम की महिमा को पहले कहा, इस उपासना में 'धाम' धामी से बड़ा माना जाता है, इसीलिए श्रीभट्टदेवाचार्यजी ने कहा–

रे मन वृन्दाविपिन निहार ।
जद्यपि मिलें कोटि चिन्तामणि, तदपि न हाथ पसार ॥
विपिनराज सीमा के बाहर, हरिहू को न निहार ।

भगवान् भी यदि इस धाम के बाहर मिलें तो यहाँ के रसिकजन उनके दर्शन नहीं करते हैं । ऐसी निष्ठा यदि हो जाएगी तो – **जय श्रीभट्ट धूर धूसरि तन,**
यह आशा उर धार ॥

धाम में यदि कोई नया आया है तो उसे एकदम से भगवान् नहीं मिलेंगे । पहले यहाँ की रज (धूल) मिलेगी, यदि यहाँ की मिट्टी भी मिल गयी तो समझो कि साक्षात् राधारानी मिल गयीं, कृष्ण मिल गये । इस आशा से यहाँ पड़े रहो कि अवश्य राधारानी मिलेंगी । इसीलिए हमने कहा कि इस उपासना में 'धाम' धामी से बड़ा माना जाता है । वृषभानुपुरशतक के रचयिता श्रीवंशीअलीजी को ग्रन्थ के आरम्भ में सबसे पहले राधारानी की वन्दना करनी चाहिए, राधारानी के कान्त श्रीकृष्ण की वन्दना करनी चाहिए परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया, पहले उन्होंने राधारानी के 'धाम' की महिमा कही । इसीलिए इस धाम में रहने वाले धाम के बाहर नहीं जाते हैं । जो धाम में अखण्ड वास करेगा, उसको अवश्य राधारानी मिलेंगी ।

जयत्यशेषाद्भुतमाधुरी ..... **जडिमाभिधानाम्** ॥१॥

जयति – जय हो । **अशेषाद्भुत माधुरी** – राधा–कृष्ण की सम्पूर्ण अद्भुत माधुरी है, **सा पुरी** – वह इस पुरी में है । कौन–सी पुरी ? **बृषाहस्कर** – वृषभानुजी, आहस्कर – भानु अर्थात् दिन बनाने वाला । वृषराशि पर जब 'सूर्य' तपते हैं तो उनका सबसे अधिक प्रभाव होता है, इसलिए उनका नाम 'वृषभानु' हुआ । **'सा पुरी बृषाहस्कर्रराजकस्य'** – वृषभानुराजा की जो पुरी है वृषभानुपुरी, उसकी जय हो; उसकी 'जय' क्यों बोलते हैं, इसलिए बोलते हैं क्योंकि एक बार श्यामसुन्दर नंदगाँव से बरसाना की ओर चले तो बीच में संकेत ग्राम पड़ता है । वहाँ एक गोपी मिली और उसने श्यामसुन्दर से कहा – 'अरे नन्द के ! तू बरसाने जा रह्यो है का ?' उस गोपी ने यूँ ही परिहास में पूछा था किन्तु उसके मुख से 'बरसाने' का नाम सुनते ही श्यामसुन्दर मूर्च्छित हो गये । इसीलिए इस श्लोक की अगली पंक्ति में कहा गया – **यन्नामश्रृण्वन्** – **यन्** माने जिस पुरी के, **नाम श्रृण्वन्** – नाम को सुनते हुए, **ननु** – निश्चित ही, **नन्दसूनु** – नन्दलाल (नन्दबाबा के पुत्र का नाम), **व्रजति** – चले जाते हैं, **अवस्थां जडिमाभिधानाम्** – जड़ता नाम वाली अवस्था (मूर्च्छावस्था) को । 'बरसाना' धाम इतना प्यारा है नन्दलाल को कि इसका नाम सुनते ही वे मूर्च्छित हो जाते हैं । इसीलिए 'धाम' को धामी से बड़ा बताया गया है । इसी का उदाहरण है यह पद – **"रे मन वृन्दाविपिन निहार"** अर्थात् हे मन ! वृन्दावन को देखो; 'वृन्दावन' माने केवल शहर वृन्दावन नहीं, 'वृन्दावन' बीस कोस का है; जहाँ हम लोग बैठे हैं, वह 'बरसाना' भी वृन्दावन में है ।

बीस कोस वृन्दाविपिन, पुर वृषभानु उदार ।
तामें गह्वर वाटिका, जामें नित्य विहार ॥

बीस कोस का वृन्दाविपिन है, उसमें वृषभानुनन्दिनी का पुर (बरसाना) है, उसमें भी गह्वरवन है, जिसमें नित्य विहार होता है, अखण्ड विहार होता है, राधारानी और श्रीकृष्ण एक क्षण के लिए भी यहाँ से नहीं जाते हैं; यह है प्रथम श्लोक का भाव ।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण किया जाता है । 'मंगलाचरण' माने अपने इष्ट को पहले स्मरण करना ।

यहाँ इष्ट 'राधारानी–श्यामसुन्दर' तो हैं किन्तु उन्हें पहले स्मरण नहीं किया गया। पहले पुरी (बरसाने) को नमन किया गया, ऐसा क्यों ? इसका कारण यह है कि यह निर्देशात्मक एवं नमस्कारात्मक मंगलाचरण है । 'निर्देशात्मक' माने निर्देश करके बताना और 'नमस्कारात्मक' माने प्रणाम करना। सर्वप्रथम धाम को प्रणाम किया गया, यह मंगलाचरण है, इससे ग्रन्थकार की धामनिष्ठा प्रकट होती है।

'श्रीकृष्ण' परब्रह्म हैं और श्रुति के अनुसार वे ''चेतनश्चेतनानाम्'' हैं अर्थात् अनन्त जीवों की चेतना के भी चेतन हैं, उन्हीं की आह्लादिनी शक्ति (आनन्द देने वाली शक्ति) 'श्रीराधारानी' हैं । उन राधारानी की जन्मस्थली के नाम श्रवण मात्र से श्यामसुन्दर जड़ की तरह मूर्च्छित अर्थात् समाधिस्थ हो जाते हैं। यह मूर्च्छा बीमारी नहीं है। यह रस की मूर्च्छा, रस की समाधि है। इससे पता चलता है कि धाम के साथ परमतत्त्व का अभेद सम्बन्ध है। श्रीबरसाना धाम एवं श्रीलाड़िलीजी का 'तादात्म्य भाव' अभिव्यञ्जित है। 'तादात्म्य' क्या होता है ? अलग होते हुए भी अलग नहीं रहना।

"तद्भिन्नत्वे सति तदभेदेन प्रतीयमानत्वं तादात्म्यम्"

जब किशोरीजी बरसाने के बाहर लीला करती हैं, वे सारे ब्रज में लीला करती हैं किन्तु वे धाम से अभिन्न रूप से जुड़ी रहती हैं, इसको 'तादात्म्य–सम्बन्ध' कहते हैं। 'राधारानी' की उपासना कोई ब्रज के बाहर भी करेगा तो वे उसे वहाँ दर्शन देंगी किन्तु वहाँ भी तादात्मक रूप से 'धाम' पहुँच जायेगा। एक ही श्लोक का भावार्थ जब पाँच–दस बार पढ़ोगे तब तुमको तादात्म्य की प्रतीति हो जाएगी और धाम की निष्ठा आ जाएगी। इस श्लोक में प्रयुक्त शब्द अद्भुतमाधुरी का अर्थ है कि बरसाने की सी अद्भुत माधुरी संसार में कहीं नहीं है; ऐसी माधुरी न कहीं थी, न है और न होगी, जो बरसाने में है। अद्भुत माधुरी वाली इस 'बरसाना' नगरी की जय हो; ये है धाम निष्ठा। ब्रजोपासना में धाम–निष्ठा बहुत बड़ी बात है। धाम–निष्ठा जब आ जाएगी तो तुम्हें 'धामी' अपने आप ही मिल जायेगा; यहाँ के उपासक लोग धाम से बाहर नहीं जाते हैं। हरिदासजी, हरिवंश जी आदि बड़े–बड़े रसिक इस धाम में ही रहे, धाम के बाहर कभी नहीं गये। हरिदासजी का जन्म अलीगढ़ जिले के हरिदासपुर ग्राम में हुआ था किन्तु धाम में आने के बाद फिर कभी वे यहाँ से बाहर नहीं गये। इसको धाम–निष्ठा कहते हैं। हम भी ब्रज में आने के बाद कभी बाहर नहीं गये। 'प्रयागराज' मेरा जन्म स्थान था, जो तीर्थराज कहलाता है, वहाँ कुम्भ मेला के रूप में संसार का सबसे बड़ा धार्मिक मेला लगता है। उ.प्र.के मुख्यमंत्री श्रीयोगीजी ने प्रयाग के कुम्भ को 'महाकुम्भ' घोषित कर दिया है। भारत में कुम्भ का पर्व केवल चार स्थानों पर होता है । ये चार स्थान हैं – हरिद्वार, नासिक, उज्जैन और प्रयाग। समुद्र– मन्थन से उत्पन्न अमृत के घड़े को लेकर गरुड़ जी चले थे और इन्हीं चार स्थानों पर उन्होंने जिस मुहूर्त में उस घड़े को रखा था, उसी को कुम्भ कहते हैं । चार स्थानों पर कुम्भ–मेला लगता अवश्य है लेकिन विशेष महत्त्व प्रयाग के कुम्भ का है। प्रयाग में संगम तट पर जहाँ कुम्भ का मेला लगता है, वहाँ इतना अधिक स्थान है, जितना संसार में कहीं नहीं है। प्रयाग में गंगा के पार भी, यमुना के पार भी, अरैल में भी इतनी अधिक जगह है जितनी संसार में कहीं नहीं है। फिर भी ग्रन्थकार ने प्रयाग को नमन नहीं किया, 'बरसाने' को नमन किया । यह दिखाता है कि इस उपासना में 'श्रीधाम' की महिमा सबसे अधिक है। धामी से भी ज्यादा 'धाम' को माना गया। यहाँ तक कहा गया – "रे मन वृन्दाविपिन निहार।" अरे मन, वृन्दाविपिन को देख। "जद्यपि मिले कोटि चिन्तामणि, तदपि न हाथ पसार ॥" 'चिन्तामणि' अनन्त चिन्ताओं को दूर कर देती है परन्तु धाम–निष्ठा के लिए कहा गया कि तुमको यदि धाम के बाहर जाने के लिए करोड़ों 'चिन्तामणि' भी दी जाएँ, तब भी उनके लिए हाथ मत पसारना अर्थात् धाम के बाहर कभी भी मत जाना। यहाँ तक कि धाम के बाहर भगवान् भी मिलें तो उनको मत देखना। "विपिनराज सीमा के बाहर, हरिहू को न निहार"

गोपियाँ 'ब्रज' को छोड़कर नहीं गयीं यद्यपि श्रीकृष्ण द्वारका चले गये किन्तु गोपियाँ 'धाम' के बाहर नहीं गयीं; इस प्रकार उन्होंने दिखाया कि हम धामनिष्ठ हैं।

इसीलिए 'श्रीवृषभानुपुरशतक' ग्रन्थ के प्रथम श्लोक में धाम की महिमा को प्रकट किया गया है, इस ग्रन्थ में १०० श्लोक हैं, अगर चाहो तो इन सभी श्लोकों को रट लो, इन्हें रटना कोई बड़ी बात नहीं है; ऐसा करने से 'राधारानी' अवश्य मिलती हैं। 'बरसाना' नाम की महिमा प्रथम श्लोक में बताई गयी है। वृषभानुपुर (बरसाने) की इतनी अधिक महिमा क्यों है ? राधारानी के कारण तो है ही किन्तु एक बहुत बड़ी बात यह है कि संसार के सबसे बड़े जगत्पिता 'ब्रह्माजी' यहाँ पर्वत बने हैं। त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु और महेश 'ब्रज' में पर्वत बने हैं। ब्रह्माजी 'बरसाने' में जो पर्वत बने हैं, उसका नाम है 'ब्रह्माचल'; ब्रह्माजी के चार मस्तक हैं, इसलिए ब्रह्माचल के चार शिखर हैं। पहला शिखर जहाँ श्रीजी का मंदिर है, उसका नाम है 'भानुगढ़' । दूसरा शिखर है 'दानगढ़', जो जयपुर–मन्दिर के निकट है । तीसरा शिखर है 'विलासगढ़', जो साँकरीखोर के ऊपर है। चौथा शिखर है – 'मानगढ़', यहाँ 'श्रीराधारानी' मान करती हैं और श्यामसुन्दर अपने मस्तक को उनके चरणों में रखकर बारम्बार उनको मनाते हैं। इस ग्रन्थ के सातवें श्लोक में लिखा है – **यत्र गह्वरकं नाम वनं द्वन्द्वमनोहरम्।**

नित्यकेलिविलासेन निर्मितं राधया स्वयम् ॥

(श्रीवृषभानुपुरशतक – ७)

'गह्वरवन' को राधारानी ने अपने विलास से बनाया है। गह्वरवन जो हमें दिखायी देता है, इसकी हर लता के नीचे श्रीजी ने विहार किया है। उपरोक्त सातवाँ श्लोक गह्वरवन की महिमा को बताता है, इसी गह्वरवन की महिमा से वृषभानुपुर की महिमा है। ये राधारानी की बहुत बड़ी कृपा है कि हम लोग 'गह्वरवन' में रह रहे हैं; जब से हम यहाँ आये हैं, कभी यहाँ से प्रयाग नहीं गये हैं; 'मानमन्दिर' गह्वरवन में मुख्य स्थल है, जहाँ राधारानी मान करती हैं। श्रीराधासुधानिधि में वर्णन है – **राधाचरणविलोडितरुचिरशिखण्डं हरिं वन्दे** ॥

(श्रीराधासुधानिधि २००)

कैसे हैं श्रीकृष्ण हमारे, श्रीराधारानी के चरणों में जो अपना मयूरमुकुट रख देते हैं। अनन्तकोटिब्रह्माण्ड नायक होकर भी वे ऐसा करते हैं। इसीलिए बरसाने का नाम सुनते ही वे मूर्च्छित हो जाते हैं।

श्रीगह्वरवननिष्ठ रसिकाचार्य 'श्रीवंशीअलीजी'

"बीस कोस वृन्दाविपिन पुर वषभानु उदार।"

बीस कोसीय वृन्दावन में उदारतापूर्वक रस की निरन्तर वृष्टि करने से 'बरसाना', श्रेष्ठ पर्वत–चोटी होने से 'वरसानु', बड़ी शिखर होने से 'वृहत्सानु' और ब्रजाधिप श्रीवृषभानुजी की राजधानी होने से यह स्थल 'वृषभानुपुर' नाम से जाना गया। पौराणिक काल में महर्षि शाण्डिल्य द्वारा निर्दिष्ट प्रमुख स्थानों में वृहत्सानु (बरसाना) का उल्लेख प्राप्त होता है –

"नन्दिग्रामे बृहत्सानौ कार्या राज्यस्थितिस्त्वया।"

(स्कन्दपुराणोक्त भागवत–माहात्म्य १/३८)

जहाँ से श्रीकृष्ण–प्रपौत्र श्रीबज्रनाभजी द्वारा सम्पूर्ण ब्रज की स्थिति देखी गई। श्रीबज्रनाभजी के बाद ग्यारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में अप्राकृत चिन्मय रस भक्ति के प्रथम आस्वादक श्रीजयदेवजी अपने काव्य 'गीत–गोविन्द' में **'राधे गृहं प्रापय'** कहकर वृषभानु–गृह (बरसाना) का स्मरण करते हैं। इसके बाद संवत् १३५६ में 'श्रीभट्टजी' युगल शतक(आदि वाणी) में **"ब्रजजन गोपी गोपगण नन्दादिक मन मोद, सुनत जनम राधा चले मिलि बरसाने कोद।"** इस प्रकार बरसाने का स्मरण करते हैं। इसके पश्चात् वृन्दावन–महिमा के अद्वितीय गायक श्रीमहावाणीकार श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी ने श्रीराधारानी की जन्मलीला द्वारा, बरसाना–लीला द्वारा बरसाना–माहात्म्य का गान किया है –

"नखत विशाखा रुचिर में अरुणोदय सुखदाय।
भादों शुक्ला अष्टमी प्रिया जनम जस गाय॥"

इसी प्रकार अनन्य निकुँजोपासक स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज **"सुबस बसो यह गाँवरो"** द्वारा ब्रजांग (बरसाना–माहात्म्य) गाते हैं एवं राधाचरण–प्रधान–उपासक श्रीहितहरिवंश महाप्रभु **"चलो वृषभानु गोप के द्वार"** वृषभानुपुर 'बरसाना' चलने की बात कहते हैं। अनुवर्ती आचार्यों में श्रीहरिरामव्यासजी 'बरसाना' को वृन्दावन–रस का उद्गम–स्थल कहते हैं – **"धनि वृषभानु धन्य बरसानो, धनि राधा की माय। जहाँ प्रगटी नटनागरि खेलत, पति सों रति पछताय॥ जाके परस सरस वृन्दावन, बरसत रसनि अघाय।**
ताके शरण रहत काको डर, कहत व्यास समझाय॥"

न केवल ब्रज का केन्द्र प्रत्युत श्रीराधारानी की जन्मलीला व स्थायी लीला की महिमा से **'बरसाना'** रस का वह केन्द्र है जहाँ से प्रवहमान रसधारा श्रीवृन्दावन सहित ८४ कोस को आप्लावित कर रही है अर्थात् श्रीमद्वृन्दावन–रस का मूल 'श्रीबरसाना' ही है। संक्षेप में यही कि 'दानलीला, रासलीला, निकुञ्जलीला, महल–लीला, बधाई–लीला' सबका केन्द्र 'वृषभानुपुर' अर्थात् 'बरसाना' है।

"गहवरवन और खोर साँकरी गलियन लीला होय।
अनुभव तब ही होत है भाव सरस हिय पोय॥"

जिसका अनुभव समय–समय पर अधिकारी जनों द्वारा देखा गया है।

श्रीवंशी अलीजी की संक्षिप्त जीवनी –

मध्य युग के बाद बरसाने के रसात्मक स्वरूप का पुनः जिन महापुरुषों ने अनुभव किया, प्रस्तुत ग्रन्थ के रचनाकार **ललितसम्प्रदाय–प्रवर्तकाचार्य** गोस्वामी श्रीवंशी अलीजी महाराज, जिनका जन्म आश्विन शुक्ल प्रतिपदा विक्रम संवत् १७६४ को सारस्वत ब्राह्मणकुल में सुनाम धन्य श्रीप्रद्युम्नगोस्वामीजी के घर श्रीमती कृष्णावतीजी के गर्भ से दिल्ली स्थित लाड़लीजी के मन्दिर (बड़ा मन्दिर) में हुआ। आप जन्म से अलौकिक प्रतिभावान थे। बाल्यकाल में ही सम्पूर्ण वेद–शास्त्र व अनेकों संस्कृत ग्रन्थों को आपने हृदयङ्गम कर लिया था, तर्कशास्त्र के अद्वितीय विद्वान थे, श्रीमद्भागवत के कठिन श्लोकों का वैदुष्यपूर्ण जब व्याख्यान करते तो बड़े–बड़े दिग्गज पण्डित भी हतप्रभ हो जाते।एक समय जयपुर के तत्कालीन शासक महाराज जयसिंह को गोस्वामी श्री प्रद्युम्न जी के दर्शन की इच्छा हुई। राजा ने विनम्रतापूर्वक उन्हें अपने दरबार में बुलाया। पिता के साथ दस वर्षीय वंशी अली जी भी साथ में आ गए। श्री राधा गोविन्द देव जी के मन्दिर प्रांगण में महाराज जयसिंह ने विद्वत समाज के समक्ष अपनी एक जिज्ञासा रखी कि भगवान् श्रीकृष्ण गुरु सान्दिपनी जी से विद्या ग्रहण करने के पश्चात् गुरु–दक्षिणा के रूप में गुरु–पुत्र लेने गये और पाञ्चजन्य (शंखासुर) का वध करके भगवान् ने शंख धारण किया किन्तु देवकी–वसुदेव को तो जन्म के पूर्व ही चतुर्भुज रूप का दर्शन करा दिया था, जो शंखादि आयुधों से

सुशोभित था, तो वहाँ शंख कहाँ से आया ? महाराज जयसिंह के प्रश्न पर समस्त विद्वत्–समाज मौन था, तब पिता श्री प्रद्युम्न गोस्वामी जी ने अपने दस वर्षीय बालक की ओर देखते हुए उन्हें उत्तर देने के लिए कहा। बालक वंशीधर ने कहा – राजन् ! भगवान् के आयुध 'पार्षद' रूप होने के कारण नित्य हैं। पाञ्चजन्य को शाप मुक्त करने के लिए प्रभु ने उसका वध किया और वह मुक्त होकर अंश रूप से पुनः अपने नित्य पार्षद रूप में मिल गया, जैसे – सनकादिक मुनीश्वरों ने जय–विजय को शाप दिया था, तीन जन्म बाद पुनः मुक्त होकर अपने नित्य पार्षद रूप में जाकर मिल गए; इसी प्रकार पाञ्चजन्य भी शाप वश अपने अंश रूप से असुर बना और प्रभु के द्वारा मोक्ष प्राप्त करके पुनः नित्य पार्षद रूप को प्राप्त हो गया। दस वर्षीय बालक वंशीधर के मुख से शास्त्र–सम्मत व सन्तोषजनक यह उत्तर पाकर राजा के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, अञ्जलिबद्ध होकर पिता श्री प्रद्युम्न गोस्वामी जी से कहा – 'ये बालक साधारण नहीं है, ये तो कोई अवतरित पुरुष प्रतीत होता है। इसके उपरान्त राजा ने सम्मानपूर्वक श्री प्रद्युम्न गोस्वामी को अपार सम्पत्ति सहित जागीर भेंट की। १५ वर्ष की अवस्था में बालक वंशीधर का विवाह हुआ एवं बीस वर्ष की अवस्था में पुण्डरीकाक्ष नामक पुत्र का जन्म हुआ। वंशीधर जी पैतृक–परम्परा से श्रीमद्भागवत की बहुत ही सुन्दर व सरल भाषा में कथा कहते थे। कालान्तर में घर–द्वार सब छोड़कर आप श्री बरसाना धाम आ गए। बरसाना में स्थित 'पीरी पोखर' के निकट एक घूरे पर बारह वर्ष तक पड़े रहे, तब वहाँ स्वयं साक्षात् श्रीराधारानी ने आकर दर्शन दिए।

परी रहौं वृषभानु के द्वारैं, जहाँ मेरी लाड़िली राधा।
खेलत आवै सुख उपजावै, प्राणन की ये साधा॥
कीरति कुल उजियारी प्यारी, हिय की चैन अगाधा।
ठौर नहीं 'वंशीअलि' हिय में, और लगै सब बाधा॥

इसके पश्चात् आप वृन्दावन में श्रृंगार वट के समीप ललित कुञ्ज में निवास करने लगे और यहीं श्रीराधा–आज्ञा से महासखी श्री ललिता जी द्वारा आपको मन्त्र–दीक्षा प्राप्त हुई जिसका आपने स्वयं उल्लेख किया है –

गुरुः श्री ललिता ज्ञेया सा तु तस्याः परासखी।
तत्त्व स्वरूपा च भक्तास्या राधातोप्याधिका मम॥

श्रीराधारानी की परा सखी श्रीललिता जी श्री वंशी अली जी की गुरु हैं और वह शिष्य वंशी अली के लिये तत्व स्वरूपा श्रीराधारानी से भी अधिक मान्य हैं।

"गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागूं पांय। बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो बताय॥" का भाव ध्वनित हो रहा है तथा श्रीराधा–दर्शन में गुरु ललिता ही निमित्त हैं। इस कारण यह भावाभिव्यक्ति है।

इस प्रकार श्रीललिताजी से दीक्षित होकर आपने 'ललित सम्प्रदाय' का प्रवर्तन किया। सम्प्रदाय के आद्याचार्य के रूप में श्री ललिता सखी को सर्वाधिक महत्त्व देते हुए कहते हैं – "इस निकुञ्ज रस में न विष्णु का प्रवेश है, न ही किसी अन्य देव का; यहाँ तो केवल ललिता जी की कृपा से ही प्रवेश प्राप्त किया जा सकता है।" कहाँ तक कहें स्वयं श्रीनन्द के पुत्र श्रीकृष्ण भी ललिताजू की कृपा के बिना इस दुर्लभ रस को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। वंशीअलीजी की नित्य–विहारोपासना अपने आप में विलक्षण है, जिसका 'वृषभानुपुर शतक' में विलक्षण दर्शन प्राप्त होता है जो श्रीराधारानी की कृपा से ही अवगम्य है। 'वृषभानुपुर शतक' के अतिरिक्त राधा स्तोत्र, ललिता मंगल, अष्टपदी एवं राधा सिद्धान्त आदि अनेक आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं। आपके शिष्य जगन्नाथभट्ट उपनाम किशोरी अली जयपुर महाराज के गुरु व अलबेली अली, रतन अली व रामावत अली आदि हुए। विक्रम संवत् १८२२ में आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को वृन्दावन स्थित ललित कुञ्ज में आपने ऐहिक लीला संवरण करके निकुँज–प्रवेश किया। सम्प्रति गादी पर महन्त आचार्य डा. श्री संजय गोस्वामी जी विराजमान हैं।

युधिष्ठिर जी को ऐसे भोग–पदार्थ प्राप्त थे, जिनकी कामना देवता भी किया करते हैं; क्यों प्राप्त थे? क्योंकि उनका मन भगवान् को समर्पित था। इस तरह भक्ति के प्रभाव से युधिष्ठिर को देवदुर्लभ भोग–पदार्थ प्राप्त थे। जो सुख देवताओं को दुर्लभ है, वह हमको इसी मनुष्य–योनि में प्राप्त हो सकता है, अगर मन हमारा भगवान् में है। लेकिन हमारा मन भगवान् में कहाँ है?

श्रीकृष्णरसगानमय ही वास्तविक ब्रज

श्रीउद्धव जी अपने सखा श्रीकृष्ण की प्रेरणा से ब्रज में ब्रजवासियों का विरह शांत करने के लिए आये। वे अपने साथ ब्रजवासियों के लिए श्रीकृष्ण का प्रेम भरा सन्देश लेकर आये थे। इसके पीछे एक गुप्त कारण यह था कि देवगुरु बृहस्पति के शिष्य और साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण के सखा होने पर भी उद्धव जी भगवान् को वश में करने वाली प्रेमाभक्ति से रहित थे। मथुरा में ब्रजवासियों, विशेषकर गोपियों के प्रेम के कारण अपने सखा श्यामसुंदर की विरहाकुल अवस्था को देखकर उद्धव जी आश्चर्यचकित हो जाते थे और समझ नहीं पाते थे कि साक्षात् पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर अपने प्रेमी ब्रजवासियों के प्रेमवश संसारीजनों की तरह अश्रु विसर्जन क्यों किया करता है ? जब उद्धवजी ने श्यामसुंदर से इसका कारण पूछा तो उन्होंने ब्रजवासियों के दिव्य प्रेम और उनकी विरह दशा का वर्णन किया परन्तु उद्धव जी ब्रजवासियों के प्रेम की महिमा को नहीं समझ सके और उन्हें साधारण संसारी प्रेमी ही समझ बैठे एवं श्रीकृष्ण से कहने लगे कि आप मुझे ब्रजवासियों के पास भेज दीजिये, मैं उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करके उनके अज्ञान जनित प्रेम से उपजे विरह सन्ताप को शांत कर दूँगा। भगवान् श्रीकृष्ण जान गये कि उद्धव को अभी ब्रजवासियों के प्रेम की उच्च दशा का ज्ञान नहीं है और यदि मैं इनसे कहूँ कि तुम भी ब्रजवासियों के पास जाकर ऐसा प्रेम प्राप्त कर लो तो ये ऐसा नहीं कर पायेंगे क्योंकि इन्हें अपने ज्ञान का मद है इसलिए भगवान् ने उद्धव जी की इच्छानुसार उन्हें गुरु बनकर ब्रजवासियों को ज्ञानोपदेश करने के लिए भेज दिया ताकि वे ब्रजगोपियों का सानिध्य प्राप्त करके उनके प्रेम की उच्चावस्था को समझ सकें और स्वयं भी शुष्क ज्ञान को तिलांजलि देकर प्रेम के रंग में रंग जाएँ। भगवान् श्रीकृष्ण का उद्धव के ऊपर यह प्रयोग सफल हुआ और जब वे प्रेम की प्रयोगशाला ब्रज में पहुँचे, यशोदा–मैया तथा ग्वालबालों का अलौकिक प्रेम देखा तो आश्चर्यचकित रह गये। इसके अनन्तर जब वे ब्रजदेवियों के सम्पर्क में आये और उनके प्रेम की परमोच्च भाव दशाओं को देखा तो उद्धव जी का सम्पूर्ण ज्ञान गर्व चूर–चूर होकर बिखर गया, उनके ज्ञान की गुदड़ी बन गयी । श्रीराधारानी और उनकी नखचन्द्रमणि की दिव्य किरणों से उत्पन्न परम प्रेमस्वरूपा ब्रजांगनाओं के दिव्य प्रेमोन्माद की लोकातीत स्थिति को देखकर उद्धव जी उनके प्रति नतमस्तक हो गये, उनके चरणकमलों में पूर्ण आत्मसमर्पण करके गद्गद कण्ठ से कहने लगे –

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥

(श्रीभागवतजी १०/४७/६३)

ब्रजाधीश श्रीनन्दबाबा के ब्रज की इन दिव्य गोपांगनाओं के चरणकमलों की रज की मैं बारम्बार वन्दना करता हूँ, जिनके द्वारा गाये हुए कथोद्गीत(श्रीकृष्ण के निर्मल यश का गान) त्रिलोकी को पवित्र कर देते हैं।

उद्धवजी ने जो कहा वह पूर्णतया सत्य है । वस्तुतः भगवान् के यश के गायन की अनन्त महिमा है। वेदों का विभाजन, १७ पुराणों तथा पंचम वेद महाभारत की रचना करने के उपरान्त भी जब वेदव्यास महाराज जी को शांति नहीं मिली तो वे आश्चर्यचकित होकर अपनी अपूर्णता के बारे में विचार करने लगे, उसी समय उनके सामने ब्रह्माजी के मानस पुत्र देवर्षि नारदजी प्रकट हो गये। व्यासजी ने अपनी असफलता का कारण नारदजी से पूछा तो उन्होंने कहा –

भवतानुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम् ।
येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम् ॥

(श्रीभागवतजी १/५/८)

व्यासजी ! आपने भगवान् के निर्मल यश का गान प्रायः नहीं किया । मेरी ऐसी मान्यता है कि जिससे भगवान् संतुष्ट नहीं होते, वह शास्त्र या ज्ञान अधूरा है।

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा
न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः ॥

(श्रीभागवतजी १/५/१०)

जिस वाणी के द्वारा, रस–भाव–अलंकार आदि व्याकरण के गुणों से भूषित होने पर भी जगत को पवित्र करने वाले भगवान् के यश का कभी गान नहीं किया जाता, वह तो कौओं के लिए दूषित पदार्थ फेंकने के स्थान के समान अपवित्र होती है। भगवच्चरणारविन्दों के आश्रित परमहंस भक्त कभी उसमें रमण नहीं करते।

तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो
यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि य–
च्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥

(श्रीभागवतजी १/५/११)

इसके विपरीत जिसमें सुन्दर रचना भी नहीं है एवं जो दोष युक्त शब्दों से युक्त है परन्तु जिसका प्रत्येक श्लोक अथवा प्रत्येक शब्द भगवान् के सुयशसूचक नामों से युक्त है, ऐसी वाणी मनुष्यों के सारे पापों का नाश कर देती है क्योंकि सत्पुरुष ऐसी ही वाणी का श्रवण, गायन और कीर्तन किया करते हैं।

श्रीकृष्णलीलाकालीन ब्रज ऐसे ही ब्रजवासियों से सुशोभित था, जो प्रतिदिन के कार्यों में हर समय अपने प्राणप्यारे श्यामसुंदर के चरित्रों का गान किया करते थे। जब उद्धवजी ने प्रथम बार ब्रज में प्रवेश किया तो उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण के ब्रज में न होने पर भी गोपी–ग्वाल अपने दैनिक क्रियाकलापों को करते समय भी निरन्तर उनके सुयश का गान करते रहते थे।

गायन्तीभिश्च कर्माणि शुभानि बलकृष्णयोः ।
स्वलङ्कृताभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुविराजितम् ॥

(श्रीभागवतजी १०/४६/११)

उद्धव जी ने देखा कि गोपी और गोप सुन्दर वस्त्र–आभूषणों से सज्जित होकर श्रीकृष्ण तथा बलराम जी के मंगलमय चरित्रों का गान कर रहे थे। इससे ब्रज की शोभा और भी बढ़ गयी थी। इसी प्रकार ब्रह्ममुहूर्त में जब गोपियाँ उठीं तो उन्होंने अपने घरों को झाड़–बुहारकर साफ़ किया और दही मथने लगीं।

उद्गायतीनामरविन्दलोचनं
व्रजाङ्गनानां दिवमस्पृशद् ध्वनिः ।
दध्नश्च निर्मन्थनशब्दमिश्रितो
निरस्यते येन दिशाममङ्गलम् ॥

(श्रीभागवतजी १०/४६/४६)

दधि–मन्थन करते समय ब्रजदेवियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के मंगलमय चरित्रों का गान कर रहीं थीं। उनका यह संगीत दही मथने की ध्वनि से मिलकर और भी अद्भुत हो गया था तथा उस संगीत की ध्वनि स्वर्गलोक तक जा पहुँची। ऐसे संगीत की स्वरलहरी सब ओर फैलकर दिशाओं का अमंगल मिटा देती है।

इसी प्रकार जब भगवान् श्रीकृष्ण कंस का वध करने के लिए मथुरा गये और उन्होंने कंस के अखाड़े में प्रवेश किया तो उस समय दंगल को देखने के लिए मथुरा की स्त्रियाँ भी आई हुई थीं। वे स्त्रियाँ श्रीकृष्ण के लोकोत्तर सौन्दर्य–माधुर्य पर मुग्ध होकर उनकी प्रशंसा करने लगीं तथा उनके उस सौन्दर्यामृत का निरंतर पान करने वाली एवं उनके प्रति पूर्णतया समर्पित ब्रजगोपियों के प्रेम की प्रशंसा करते हुए कहने लगीं –

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप–
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठयो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥

(श्रीभागवतजी १०/४४/१५)

ब्रज की गोपियाँ धन्य हैं, निरन्तर श्रीकृष्ण में ही चित्त लगा रहने के कारण प्रेम भरे हृदय से, आँसुओं के कारण गद्गद कण्ठ से वे उन्हीं के गुणों का सतत गान करती रहती हैं; वे दूध दुहते, दही मथते, धान कूटते, घर लीपते, पालने में रोते हुए बालकों को चुप कराते, घरों को झाड़ते–बुहारते तथा घर के अन्य सभी कार्यों को करते समय श्रीकृष्ण के गुणों के गान में ही सदा–सर्वदा तन्मय रहती हैं।

इसी प्रकार जब श्यामसुन्दर ने वृन्दावन में महारास करने का संकल्प किया और अपनी वंशी पर रात्रि में ब्रजांगनाओं का आह्वान किया तो वे अपने समस्त लौकिक कार्यकलापों को छोड़कर अपने प्राणवल्लभ के पास दौड़ी चली आयीं और जब श्यामसुन्दर ने उनके प्रेम की परीक्षा लेने के लिये उन्हें स्त्रियों के कर्त्तव्य के रूप में पति व उसके परिवारीजनों की सेवा का उपदेश

करते हुए उन्हें घर वापस लौट जाने के लिए कहा तो उस समय गोपियों ने श्रीकृष्ण की इस आज्ञा का पालन नहीं किया अपितु उनके उपदेश का खण्डन करते हुए प्रणयकोप के कारण गद्गद कण्ठ से प्रणय गीत का गान किया। गीत के माध्यम से अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हुए कृष्ण प्रेम को ही स्त्रियों के सर्वोच्च कर्त्तव्य के रूप में स्थापना की। उनके इस उत्तर को सुनकर श्यामसुन्दर निरुत्तर हो गये, उनसे कोई जवाब देते नहीं बना और फिर वे ब्रज रमणियों को प्रसन्न करने के लिए उनके साथ यमुना के पुलिन पर रमण करने लगे। इस रास क्रीड़ा के समय जब गोपांगनाओं को अपने सौभाग्य का मद हो गया तो उसका उपशमन करने के लिए रासेश्वरी सहित रासेश्वर अन्तर्धान हो गये। उस समय गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण के दर्शन पाने हेतु अनेक प्रयास किये और अंत में यमुना पुलिन पर सभी ने एक साथ एक गीत गाया, जिसे गोपी गीत कहते हैं। गोपियों के इस करुणाजनक उद्गीत को सुनकर श्यामसुन्दर से नहीं रहा गया और वे मन्द-मन्द मुस्कान के साथ अपनी प्रेयसियों के मध्य प्रकट हो गये।

श्रीजी व ठाकुरजी का गान में ही सर्वाधिक प्रेम है; इस प्रकार देखा जाये तो गान का ब्रजगोपियों के, ब्रजवासियों के जीवन में, उनके कृष्णानुराग के सन्दर्भ में विशेष महत्त्व रहा है। गान का भगवद्भक्ति में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण योगदान है। चारों वेदों में सामवेद के मन्त्र गीतात्मक हैं, उनको गाया जाता है। इसीलिए अन्य वेदों की अपेक्षा सामवेद का अधिक महत्त्व है। स्वयं भगवान् नारायण जब अपने वाहन गरुड़जी पर विराजमान होकर चलते हैं तो गरुड़ जी के पंखों से सामवेद के मन्त्रों का गायन होता रहता है। ब्रह्माजी के मानस पुत्र देवर्षि नारद अपनी वीणा पर सदा श्रीहरि के गुणों का गायन करते रहते हैं। उनके बारे में सूत जी ने भागवत में कहा है –

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः।
गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत्॥

(श्रीभागवतजी १/६/३९)

अहो ! ये देवर्षि नारद जी धन्य हैं क्योंकि शार्ङ्गपाणि भगवान् की कीर्ति को अपनी वीणा पर गा-गाकर स्वयं तो आनन्दमग्न होते ही हैं, साथ ही त्रितापतप्त इस जगत् को भी आनन्दित करते रहते हैं।

भगवद्गीता क्या है ? यह भी कुरुक्षेत्र की रणभूमि में अर्जुन के विषाद और मोह को दूर करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा गाया हुआ गीत है। गीत होने के कारण ही इसे गीता भी कहा जाता है। भगवान् के द्वारा गाये हुए इस गीता रूपी अमर गीत के द्वारा न केवल अर्जुन का वरन् अब तक अनगिनत जीवों के मोह का नाश होता आया है और सदा होता रहेगा। श्रीमद्भागवत में कुछ अध्याय ऐसे हैं जिनको गीत कहा गया है, ऐसा इसलिए क्योंकि इन्हें गान के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है, जिनमें सबसे प्रमुख हैं प्रेम ध्वजा गोपिकाओं के द्वारा गाये गये पाँच प्रेम गीत जैसे वेणु गीत, प्रणय गीत, गोपी गीत, युगल गीत और भ्रमर गीत। भ्रमर गीत में तो एक भ्रमर को देखकर गोपिकाओं का उद्धवजी से संवाद भी गीत के माध्यम से हुआ और उस समय की ब्रजदेवियों की इस अद्भुत प्रेम दशा को ही देखकर उद्धव जी का सारा ज्ञान गर्व उतर गया और वे विधाता से गोपिकाओं की चरणरज पाने की अभिलाषा से वृन्दावनधाम में लता, झाड़ी और औषधि (जड़ी-बूटी) बनने की प्रार्थना करने लगे।

गौ-सेवकों की जिज्ञासा पर माताजी गौशाला का

Account number दिया जा रहा है –

SHRI MATAJI GAUSHALA, GAHVARVAN,
BARSANA, MATHURA

Bank – Axis Bank Ltd **A/C – 915010000494364**

IFSC – UTIB0001058 **BRANCH – KOSI KALAN** **MOB. NO. – 9927916699**

विराहात्मक भावाराधन से प्रेमोदय

गोपियों के गीतों के अतिरिक्त भागवत में अन्य गीत 'रुद्र गीत, भिक्षु गीत, पिंगला गीत, ऐल गीत एवं महिषी गीत' इत्यादि हैं। राजा प्राचीनबर्हि के प्रचेता नामक दस पुत्र थे। पिता ने जब उन्हें सन्तान उत्पन्न करने का आदेश दिया तो उन्होंने समुद्र के भीतर खड़े होकर दस हजार वर्ष तक तपस्या करते हुए भगवान् श्रीहरि की आराधना की। घर से तपस्या के लिए जाते समय मार्ग में महादेवजी ने उन्हें दर्शन देकर एक दिव्य स्तोत्र प्रदान किया, जिसे रुद्र गीत कहते हैं। उसी का प्रचेतागण एकाग्रतापूर्वक ध्यान, जप और पूजन करते रहे। इस रुद्र गीत के पाठ से ही उन्हें भगवान् के दर्शन हुए। भागवत के चतुर्थ स्कन्ध के चौबीसवें अध्याय में इसका वर्णन किया गया है, अतः उस अध्याय को रुद्र गीत कहा गया है। इसी प्रकार एक कृपण और लोभी ब्राह्मण के धन का पूर्णतया विनाश हो जाने पर जब वह अत्यन्त दरिद्र हो गया और दुष्ट लोग उसे तरह–तरह से सताने लगे तब उसके हृदय में विलक्षण वैराग्य और विवेक उत्पन्न हुआ तथा अपनी इस स्थिति में भी परम संतुष्ट होकर उसने जिस गीत को गाया, उसे भिक्षु गीत कहा जाता है। प्राचीन भारत में ऐसा नियम था कि सन्यास लेने पर साधकों को भिक्षु गीत का अध्ययन कराया जाता था जिससे कि उनके हृदय में भी ज्ञान–वैराग्य का उदय हो और वे तितिक्षु बनें। इसी प्रकार अवधूत दत्तात्रेय जी ने चौबीस गुरु बनाकर उनसे शिक्षा ग्रहण की थी, उन गुरुओं में एक थी पिंगला वेश्या। वेश्या होने पर भी जब एक बार उसे अपने मनोवांछित भोग की प्राप्ति नहीं हुई तो उसका चित्त व्याकुल हो गया और उसे अपनी इस वृत्ति से बड़ा वैराग्य हुआ। वैराग्य की भावना जाग्रत होने पर उसने जो गीत गाया, उसे ही पिंगला गीत कहते हैं। विवेक–वैराग्य युक्त इस गीत को सुनकर ही भगवदावतार दत्तात्रेय जी ने उस वेश्या को अपना गुरु मान लिया। इसी तरह परम यशस्वी सम्राट् पुरूरवा को उर्वशी द्वारा त्याग देने पर विषयों से वैराग्य हो गया और फिर उन्होंने भी अपने वैराग्य की गाथा को एक गीत के माध्यम से व्यक्त किया जिसे ऐल गीत कहते हैं। द्वारका में भगवान् श्रीकृष्ण की सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ अपने परम प्रियतम भगवान् के प्रति इस प्रकार अनुरक्त रहती थीं कि कभी–कभी उनकी उपस्थिति में भी प्रेमोन्माद के कारण विरह का अनुभव करने लगतीं और अपनी भावनाओं को गीत के माध्यम से व्यक्त करतीं। उनके द्वारा प्रेम की इस विलक्षण स्थिति में जिस गीत का गायन किया गया, उसे महिषी गीत कहते हैं। ऐसा कहा जाता है कि आदि कवि वाल्मीकिजी के द्वारा भगवान् श्रीराम के चरित्रों से भरपूर विश्व के आदि महाकाव्य रामायण की रचना भी गीत के माध्यम से हुई। एक बार महर्षि वाल्मीकि तमसा नदी के तट पर भगवान् की आराधना कर रहे थे। नदी के तट पर ही नर और मादा सारस पक्षी विहार कर रहे थे। उसी समय एक व्याध ने आकर नर सारस पर बाण का सन्धान कर दिया। बाण लगते ही तत्काल उसकी मृत्यु हो गयी। उसके विरह में मादा सारस भीषण आर्त्तनाद करने लगी। महर्षि वाल्मीकि के हृदय में सारस पक्षियों पर हुए इस आघात से अपार वेदना और करुणा का उदय हुआ और करुणा के उद्रेक में उनके मुख से श्लोक के रूप में सहसा एक कविता अथवा गीत का प्रस्फुटन हुआ। श्लोकबद्ध इस करुण गीत का स्वाभाविक रूप से सृजन होने के कारण ही आगे चलकर ब्रह्माजी ने उनको रामायण के रूप में विश्व के सबसे पहले महाकाव्य की रचना का आदेश दिया और फिर महर्षि ने श्री रामजी के मंगलमय चरित्रों का विस्तार करते हुए रामायण की रचना की। करुणा से उपजे इस काव्य अथवा गीत का सृजन होने के कारण ही हिंदी साहित्य के प्रकृति के सुकुमार कवि के नाम से प्रसिद्ध सुमित्रानन्दन पन्त ने कहा था –

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान
निकल कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।

अष्टछाप के संत कवियों में मूर्धन्य हिन्दी साहित्य के सूर्य श्रीसूरदासजी ने गान के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए कहा है –

जो सुख होत गोपालहि गाये ।
सो सुख होत न जप तप कीन्हे,
कोटिक तीरथ नहाये ।।

गोपालजी की अलौकिक महिमा का गान करने से जिस विलक्षण आनन्द की प्राप्ति होती है, वैसा आनन्द न तो जप करने से प्राप्त होता है, न तपस्या करने से प्राप्त होता है और न ही करोड़ों तीर्थों का सेवन करने, वहाँ की पवित्र नदियों में स्नान करने से प्राप्त होता है। एक बार नारदजी भगवान् के दर्शन करने के लिए वैकुण्ठ में गये तो उन्हें वहाँ भगवान् का दर्शन नहीं हुआ। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। अनन्तर, नारद जी ने निर्जन वन और गुफाओं में रहने वाले योगियों के पास जाकर भगवान् को ढूँढ़ने का प्रयास किया किन्तु वहाँ भी भगवान् का कोई पता नहीं लगा। अन्त में वे पृथ्वी पर भगवद् भक्तों के पास भगवान् की खोज में पहुँचे तो उन्होंने देखा कि एक स्थान पर कुछ भक्त भगवान् के यश का गान कर रहे थे और उन्हीं के निकट भगवान् बैठे हुए दिखायी दिए। अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर नारदजी ने भगवान् से कहा कि मैं तो आपके दर्शन के लिए वैकुण्ठ गया पर वहाँ आपका दर्शन नहीं हुआ, योगियों के मध्य जाकर आपको पाने का प्रयत्न किया परन्तु वहाँ भी आपका कुछ पता नहीं लगा किन्तु यहाँ इन भक्तों के बीच मुझे आपका दर्शन हुआ। अतः आप मुझे अपना कोई निश्चित ठिकाना बताइए जहाँ जाने पर सहजता से मैं आपका दर्शन कर सकूँ। नारदजी की बात सुनकर भगवान् ने कहा –

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।।

न तो मैं वैकुण्ठ धाम में रहता हूँ और न ही योगियों के हृदय में। मेरे भक्त प्रेम से जहाँ मेरे यश का गान करते हैं, मैं वहीं जाकर बैठ जाता हूँ। तुम्हें यदि मेरे दर्शन करने हैं तो मेरी महिमा का गान करने वाले भक्तों के पास चले जाना। वहाँ तुम्हें बड़ी आसानी से मेरे दर्शन हो जायेंगे।

एक बार गान में तत्पर देवर्षि नारद जी विभिन्न लोकों का दर्शन करते हुए इलावृतखण्ड में पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने एक ऐसा नगर देखा जिसमें रहने वाले नर–नारी अत्यन्त सुन्दर थे परन्तु उनमें से कितने ही लोगों के पैर नहीं थे, गुल्फ नहीं थे, घुटने नहीं थे। वे सभी विकलांग और कृशोदर थे। इस प्रकार नारदजी ने वहाँ की स्त्रियों और पुरुषों को अंग–भंग देखकर उनसे कहा कि आप लोगों के मुख तो कमल के समान हैं, शरीर दिव्य हैं तथा रमणीय गीत गाने में आप संलग्न हैं फिर भी आप अंग–भंग कैसे हो गये ? आप लोग कौन हैं ?

नारदजी की बात सुनकर उन सबने कहा कि हम लोग राग हैं और वेदपुर में निवास करते हैं। हम लोग अंग–भंग कैसे हो गये, इसका कारण यह है कि ब्रह्माजी के एक पुत्र पैदा हुआ है, जिसका नाम है नारद। वह प्रेम से उन्मक्त होकर ताल–स्वर से रहित असामयिक गान किया करता है। उसके ताल–स्वर से रहित असामयिक गानों–विगानों से हम सब अंग–भंग हो गये हैं।

उनकी बात सुनकर नारदजी को बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने उन रागों से पूछा कि नारद मुनि को किस प्रकार से काल और ताल का ज्ञान हो सकता है, जिससे वे स्वरयुक्त गीत गा सकें। नारदजी के प्रश्न का उत्तर देते हुए उन रागों ने कहा कि यदि सरस्वती देवी नारद को संगीत की शिक्षा दे सकें तो कौन सा राग किस समय, किस ताल–स्वर से गाना चाहिए, इसे वे मुनि जान सकते हैं।

उन रागों की यह बात सुनकर सरस्वती जी का कृपा प्रसाद पाने के लिए नारदजी ने शुभ्रगिरि पर्वत पर जाकर सौ दिव्य वर्षों तक अत्यन्त दुष्कर तपस्या की। उनके इस कठोर तप से सरस्वती जी प्रसन्न हुई और उन्हें दर्शन दिया। नारदजी ने सरस्वतीजी की स्तुति की। उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर सरस्वती जी ने नारद जी को स्वरब्रह्म से विभूषित एक वीणा प्रदान की, साथ ही राग–रागिनी, उनके पुत्र, देशकालादिकृत भेद तथा ताल, लय और स्वरों का ज्ञान भी दिया। ग्रामों के छप्पन कोटि भेद और असंख्य अवान्तर भेद, नृत्य, वादित्र तथा सुन्दर मूर्च्छना – इन सबका ज्ञान नारदजी को प्राप्त हुआ।

सरस्वती देवी ने स्वरगम्य सिद्धपदों द्वारा नारदजी को संगीत की शिक्षा दी। इस प्रकार नारद को रासमण्डल के उपयुक्त अद्वितीय रागोद्भावक बनाकर सरस्वती देवी वैकुण्ठ धाम को चली गयीं। तदनन्तर इस रागरूप मनोहर एवं गुह्य ज्ञान का उपदेश किसको देना चाहिए, इसका बुद्धिपूर्वक विचार करके नारदजी गन्धर्व नगर में गये। वहाँ तुम्बुरु नामक गन्धर्व को अपना शिष्य बनाकर नारदजी मधुर स्वर से वीणा बजाते हुए भगवान् के गुणों का गान करने लगे। अब उनके मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि किन लोगों के सामने इस मनोहर रागरूप गीत का गान करना चाहिए ? इसको सुनने का पात्र कौन है ? इसकी खोज करते हुए नारदजी इन्द्र के पास गये। उनको इस विषय का आनन्द लेते न देख नारद जी अपने सखा तुम्बुरु के साथ राग–रागिनियों का निरूपण करने के लिए सूर्यलोक में गये। वहाँ सूर्यदेव को रथ के द्वारा भागे जाते देख देवर्षि नारद तत्काल शिवजी के पास गये। उन्होंने देखा कि शिवजी तो नेत्र बंदकर ध्यान में निमग्न हैं। यह देख नारदजी ब्रह्मलोक में अपने पिता ब्रह्मा जी के पास गये। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा को सृष्टि–रचना में तत्पर देख नारदजी वहाँ भी न ठहर सके। वहाँ से वे वैकुण्ठलोक में गये किन्तु भगवान् विष्णु को किसी भक्त पर कृपा करने के लिए कहीं जाते देख नारदजी तुम्बुरु के साथ करोड़ों ब्रह्माण्ड समूहों को लाँघकर प्रकृति से परे गोलोकधाम में जा पहुँचे। गोलोक के भी भीतर स्थित रमणीय वृन्दावन में वे गये और फिर वहाँ से गोवर्धन पर्वत का दर्शन करते हुए राधा–माधव के निकुंज में पहुँचे। निकुंज द्वार पर सखियों ने उन दोनों का परिचय और उनके वहाँ आने का कारण पूछा। नारदजी और तुम्बुरु ने कहा – हम दोनों गान विद्या में कुशल गायक हैं और अपनी वीणा की मधुर ध्वनि भगवान् राधावल्लभ श्रीकृष्ण को सुनाने के लिए यहाँ आये हैं। आप हमारी यह बात प्रभु से निवेदित कर दीजिये। सखियों ने नारदजी का सन्देश श्रीकृष्ण तक पहुँचा दिया और फिर भगवान् ने उन्हें भीतर बुला लिया। वहाँ भगवान् की आज्ञा से तुम्बुरु सहित नारदजी ने वीणावादन की अद्वितीय कला को प्रस्तुत किया। श्रीकृष्ण उस अद्वितीय कला से बहुत प्रसन हुए और सिर हिलाते हुए उस वीणा की विलक्षण स्वर लहरी की सराहना करने लगे। अन्ततोगत्वा प्रेम के वशीभूत होकर माधव जलरूप हो गये। उनके दिव्य शरीर से जो जल प्रकट हुआ, उसे ब्रह्मद्रव के नाम से लोग जानते हैं। उसी ब्रह्मद्रव का जल जब गोलोकधाम से इस ब्रह्माण्ड में आया तो लोगों ने उसे पापहारिणी स्वर्धुनी 'गंगा' के नाम से जाना। इस प्रकार देखा जाए तो गर्ग संहिता में वर्णित देवर्षि नारदजी के इस आख्यान में गान की अलौकिक महिमा का उल्लेख किया गया है कि किस प्रकार स्वर ताल रहित संगीत विद्या के अभाव में नारदजी के द्वारा पहले जो गान किया गया, उससे राग–रागिनी अंग–भंग हो गये। अनन्तर सरस्वती जी की उपासना के द्वारा उन्हें दिव्य संगीत की शिक्षा प्राप्त हुई और फिर गान कला में पूर्ण कुशल होकर जब नारदजी ने गोलोकधाम में साक्षात् श्रीराधा–माधव के समक्ष अपनी संगीत कला को प्रस्तुत किया तो स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम अखिल ब्रह्माण्ड नायक भगवान् श्रीकृष्ण ही जल रूप हो गये और उनके दिव्य शरीर से जो दिव्य जल उत्पन्न हुआ, वही त्रिलोकपापनाशिनी गंगा नदी बना। इससे पता चलता है कि भगवान् की उपासना में, उनको प्रसन्न करने के लिए गान कला का कितना महत्वपूर्ण योगदान है। द्वापर युग में सम्पूर्ण ब्रज श्रीकृष्ण यश के गान से गुंजायमान होता रहता था। इसका परिणाम यह था कि ब्रज सब प्रकार से समृद्धिशाली बना हुआ था। कंस के भेजे हुए जो भी असुर ब्रज में आये, उन सभी का विनाश हो गया; वे ब्रजभूमि को कोई क्षति नहीं पहुँचा सके परन्तु आज सर्वत्र कलियुग का प्रभाव होने के कारण ब्रज भी इसके प्रहार से अछूता नहीं रह सका है ...।

जिसकी भगवान् में भक्ति है, वह अमृत के समुद्र में विहार कर रहा है, उसे स्त्री के क्षुद्र (नीच) गड्ढे के पानी अर्थात् स्त्री के तुच्छ योनिद्वार से स्रवित गन्दे कामवारि से क्या प्रयोजन है?

सर्वोत्तम साधन 'संकीर्तन'

आज से लगभग सत्तर वर्ष पूर्व, परम श्रद्धेय ब्रजनिष्ठ संत श्रीरमेशबाबा जी महाराज जब ब्रज में आये तो श्रीराधारानी की क्रीड़ा भूमि बरसाने में उनके मान भवन श्रीमान मन्दिर को ही अपना निवास स्थल बनाकर वे धाम और धामी की सेवा में पूर्णतया समर्पित हो गये। श्रीबाबा अपने आरम्भिक दिनों में मौन रहकर ही साधना में निमग्न रहते थे परन्तु उन्हें एक बात बहुत खटकती थी कि मानमंदिर के आसपास के गाँवों में कहीं कीर्तन नहीं होता था, कहीं से कीर्तन की ध्वनि नहीं सुनाई पड़ती थी। उन्होंने विचार किया कि यह कैसा ब्रज है, जहाँ भगवन्नाम कीर्तन की मंगलमयी ध्वनि ही सुनाई नहीं देती है। मानमंदिर के प्रबन्धक श्रीराधाकान्त शास्त्री जी के पिता श्रीप्रकाश जी उन दिनों श्रीबाबा का दर्शन करने कभी–कभी मानगढ़ आया करते थे। अपना मौन व्रत तोड़कर एक दिन श्रीबाबा ने उनसे कहा कि आपके गाँव में कहीं कीर्तन नहीं होता है। अतः मैं वहाँ कीर्तन प्रारंभ करवाना चाहता हूँ। क्या इस पुनीत कार्य में आप मेरा सहयोग करेंगे ? श्रीबाबा के इस प्रस्ताव पर श्रीप्रकाश जी ने पूर्ण सहयोग करने का आश्वासन दिया। फिर क्या था, श्रीबाबा श्रीप्रकाश जी के साथ मानपुर पहुँचे एवं थोड़े से अन्य ग्रामवासियों के साथ उन्होंने वहाँ कीर्तन करना प्रारम्भ किया। अब तो श्रीबाबा द्वारा मानपुर में कीर्तन करने का यह दैनिक कार्यक्रम बन गया। इसके बाद उन्होंने मानमंदिर में भी कीर्तन आरम्भ किया, जिसमें निकटवर्ती मानपुर और चिकसौली गाँवों के ब्रजवासी सम्मिलित हुआ करते थे। श्रीबाबा महाराज ने प्रभु की आराधना करने के लिए गान को ही प्रमुख साधन के रूप में चुना और सर्वत्र इसका प्रचार किया। कुछ समय तक उन्होंने गह्वर वन में अपनी कुटिया बनाकर निवास किया तो वहाँ भी आजीवन अखण्ड कीर्तन करने का संकल्प लेकर निम्बार्क सम्प्रदाय के एक अन्य महात्मा के साथ वे केवल ढोलक पर ही दिन–रात कीर्तन किया करते थे। परन्तु उस समय के अधिकतर साधु गान की महिमा से अनभिज्ञ थे, वे केवल माला पर ही जप किया करते थे अतः उन्हें श्रीबाबा के द्वारा दिन–रात कीर्तन किया जाना रास नहीं आया। उनमें से कुछ ने ब्रजवासियों से इस बात की शिकायत की तो ब्रजवासियों ने श्रीबाबा से कहा कि आपके कीर्तन करने से इन साधुओं की साधना में व्यवधान होता है, इनके रात्रि शयन में भी बाधा होती है अतः आप यह कीर्तन बन्द कर दीजिये और माला पर जप कीजिये। इसी प्रकार जब बाबा महाराज मानपुर ग्राम में मधुकरी के लिए जाते थे तो वहाँ भी कीर्तन किया करते थे, उन्होंने घर–घर में कीर्तन का प्रचार कर दिया। इसका यह प्रभाव हुआ कि गाँव में घर–घर में कीर्तन होने लगा परन्तु भगवत् यश के गान की महिमा से रहित संकीर्ण बुद्धि के साधुओं को यह पसन्द नहीं आया और उन्होंने ब्रजवासियों को दिग्भ्रमित करते हुए कहा कि यह गाना–बजाना, कीर्तन करना तो हल्ला–गुल्ला है, व्यर्थ का साधन है। अपना वास्तविक कल्याण चाहते हो तो माला पर जप ही किया करो। इसी प्रकार जब श्रीबाबा महाराज मान मन्दिर में ब्रजवासियों के साथ कीर्तन किया करते थे तो उस समय विविध वाद्य जैसे ढोलक, ताशे और बेला की तुमुल ध्वनि के साथ कीर्तन होता था। इस संकीर्तन की मंगलमयी ध्वनि दूर–दूर तक जाया करती थी। इसकी दिव्य महिमा से अनजान कुछ विरोधी और ईर्ष्या, कालुष्य से ग्रसित साधुओं ने श्रीबाबामहाराज के गुरुदेव श्रीप्रियाशरणबाबा से शिकायत की कि ये तो ब्रजवासी ऊधमी लड़कों को साथ लेकर रात भर हल्ला–गुल्ला करते हैं, इनके शोरगुल मचाने से हम लोग रात्रि में ठीक से सो भी नहीं पाते हैं। कृपया आप इस कीर्तन को बंद करवा दीजिये। उनकी शिकायत को सुनकर गुरुदेव श्रीप्रियाशरणजीमहाराज ने श्रीबाबा के पास आकर कहा कि ब्रजवासियों को साथ लेकर तुम्हारे इस संकीर्तन से यहाँ के कुछ साधुओं को कष्ट होता है, अतः तुम इस संकीर्तन को बंद कर दो और ब्रज के प्राचीन संतों की जो साधना की शैली है, एक आसन पर ही दिन–रात बैठकर जप करते हुए राधा–माधव की अष्टयाम लीला

का चिन्तन करना, उसी साधन को अंगीकार करो। श्रीबाबा महाराज ने अपने गुरुदेव की सभी आज्ञाओं को पूर्णतया पालन किया था परन्तु इस साधन की आज्ञा होने पर उन्होंने कहा कि एक आसन पर दिन–रात बैठकर जप के साथ अष्टयाम लीला की भावना करना मेरी सामर्थ्य के परे है, इतने क्लिष्ट साधन को मैं नहीं कर पाऊँगा। वस्तुतः तो श्रीबाबामहाराज इस साधन को अच्छी प्रकार से कर सकते थे परन्तु उन्होंने इसको करने से इसलिए इन्कार कर दिया क्योंकि भजन या साधना दो प्रकार की होती है, एक तो होता है 'एकान्तिक भजन' जिसमें साधक जनसंग से दूर रहकर एकान्त में साधना करता है ताकि किसी प्रकार का व्यवधान न हो। दूसरे प्रकार की साधना या भजन वह है, जो परोपकार को, लोक कल्याण की भावना को ध्यान में रखकर किया जाता है। प्राचीनकाल में ऋषि–मुनि एकान्तिक साधना को करने के लिए किसी निर्जन वन अथवा पर्वतों की गुफाओं में बैठकर भजन किया करते थे। इस प्रकार की साधना केवल आत्मकल्याण की भावना को लेकर की जाती है, इसमें दूसरों के कल्याण का कोई विचार नहीं किया जाता। इसीलिए प्रह्लाद जी ने भागवत में नृसिंह भगवान् के समक्ष इस प्रकार की साधना का खण्डन किया है, उन्होंने कहा है –

प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा
मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः।
नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको
नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये॥

(श्रीभागवतजी ७/९/४४)

बड़े–बड़े ऋषि–मुनि प्रायः अपनी मुक्ति के लिए निर्जन वन में जाकर मौनव्रत धारण कर लेते हैं। उनके अन्दर परार्थ निष्ठा नहीं होती है। इसलिए वे दूसरों की भलाई के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं करते हैं परन्तु मेरी दशा तो दूसरी ही हो रही है। मैं संसार के भूले–भटके हुए इन असहाय जीवों को छोड़कर अकेला मुक्त नहीं होना चाहता। इन भटकते हुए प्राणियों के लिए आपके अतिरिक्त और कोई सहारा भी दिखायी नहीं पड़ता। इसी प्रकार शेषावतार श्रीरामानुजाचार्यजी के गुरुदेव ने इन्हें मन्त्र देकर उसे गुप्त रखने का आदेश दिया था। इस मन्त्र को जपते ही उन्हें भगवान् ने अपना प्रत्यक्ष दर्शन दिया। दयालु श्रीरामानुजाचार्यजी ने सोचा कि जिस प्रकार मैंने दर्शन पाया, उसी प्रकार सभी लोग भगवान् का दर्शन प्राप्त करें। ऐसा विचारकर उसी समय रात में ही आप मंदिर के गोपुर द्वार पर चढ़ गये और वहीं से उच्च स्वर से आपने मन्त्र का उच्चारण किया। मन्त्रध्वनि चारों ओर फ़ैल गयी, उसे सुनकर बहत्तर भक्तों ने सीख करके धारण कर लिया, ये सभी सिद्ध भक्त महापुरुष और आचार्य के प्रमुख शिष्य हुए। यह समाचार सुनकर गुरुदेव ने रामानुज को फटकारते हुए कहा कि तुमने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है, अतः तुम्हें निश्चय ही नरक में निवास करना होगा। यह सुनकर श्रीरामानुज जी बड़ी ही विनम्रतापूर्वक बोले कि यदि केवल मैं ही नरक में जाऊँ और मेरे बदले अनेक नर–नारी भगवद्धाम को जाएँ तो ऐसे नरक की मैं जन्म–जन्म याचना करता हूँ। श्रीरामानुज जी की यह जीव दया देखकर गुरुदेव का हृदय भाव से भर गया और 'मन्नाथ–मन्नाथ' कहते हुए उनको हृदय से लगाकर बोले – जहाँ प्राणियों के ऊपर इतनी अपार करुणा है, वे भला कभी नरक में जा सकते हैं। निश्चय ही आप मेरे शिष्य नहीं, मेरे नाथ हैं। मेरे ऊपर महान अनुग्रह करके मुझे बड़ाई देने के लिए ही आपने मेरा शिष्यत्व स्वीकार किया है। वस्तुतः तो आप मेरे नित्य गुरु हैं। ऐसे अपार करुणावरुणालय महापुरुष जीवों पर दया करने के लिए कभी–कभी अपने गुरुदेव और भगवान् की आज्ञा का भी उल्लंघन कर देते हैं। जीवों का कल्याण करने के लिए ही वे ऐसा करते हैं न कि अपने किसी व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण। श्रीबाबा महाराज ने भी अपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन इसीलिए नहीं किया क्योंकि जिस साधन को करने का उन्होंने उपदेश दिया था, वह उच्च कोटि का साधन होने पर भी केवल आत्मकल्याण तक ही सीमित था। उससे केवल उस साधन को करने वाले का ही कल्याण हो सकता था परन्तु उससे परोपकार नहीं हो सकता था, दूसरे लोगों का उससे कोई हित नहीं हो सकता था।

असली आनन्दप्रदायिनी 'आराधना'

श्रीचैतन्यमहाप्रभु ने कहा है –

जपि लेते हरि नाम करिया निज साधन,
उच्च संकीर्तन करे परोपकार ।

नाम जप करने से केवल जपने वाले का ही कल्याण होता है, उससे समाज का कल्याण नहीं होता । जबकि उच्च स्वर से कीर्तन करने का लाभ यह है –

पशु–पक्षी कीट–भृंग बोलि ते न पारे,
शुनि लेई हरि नाम तारा सब तरे ।

पशु–पक्षी, कीड़े–मकोड़े आदि जीव हरि नाम नहीं उच्चारण कर सकते हैं परन्तु उच्च स्वर से नाम–कीर्तन करने पर वे नाम का श्रवण कर सकते हैं और इसी उपाय से भवबन्धन से मुक्त हो सकते हैं ।

गीतगोविन्द में गान की ही महिमा का साक्षात् स्वरूप है, एक मालिन की लड़की इसे गाती थी तो ठाकुरजी उस गान को सुनने के लिए उसके पीछे–पीछे चलते थे .....नामदेव व नरसी मेहता आदि भक्तजनों ने भी इसी सरस भक्ति को किया ....गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने भी कहा है – कलियुग केवल हरिगुन गाहा ..... एहि कलिकाल न साधन दूजा ..... इसीलिए परम दयालु श्रीबाबामहाराज ने गुरुदेव के बताये हुए साधन को नहीं किया और ब्रजवासियों के साथ संकीर्तन करना बंद नहीं किया । यदि वे गुरु के द्वारा बताये हुए साधन को ही करते तो उससे ब्रजवासियों के साथ कीर्तन करना बंद हो जाता और इस तरह इतनी अधिक संख्या में जो ब्रजवासी बाबा के संसर्ग से कीर्तन का लाभ उठा रहे थे, उनके कल्याण का मार्ग भी अवरुद्ध हो जाता । जब श्रीबाबा नये–नये ही ब्रज में आये थे और मानगढ़ में निवास करते थे, उसी समय संगीत में रुचि होने और सर्वकल्याणकारी साधन होने के कारण वे श्रीजी के मंदिर में होने वाली समाज (ब्रजवासियों द्वारा गाये जाने वाले पदगान) में मृदंग बजाने के लिए प्रतिदिन जाया करते थे । वहीं पर उनका सम्पर्क श्रीजी मन्दिर के गोस्वामी और ग्वारिया बाबा के शिष्य तथा प्रसिद्ध गवैय्या श्री किशोरी लाल गोस्वामी जी से हुआ । एक बार समाज गायन के समय मंदिर में श्रीकिशोरी लाल जी शास्त्रीय संगीत की गायन शैली के अनुरूप गा रहे थे और दुलरी–तिलरी की तान का उच्च स्वर से आलाप ले रहे थे, उसी समय तान को नीचे खींचते समय वृद्ध होने के कारण गोस्वामीजी का गला रुक गया । उस समय श्रीबाबा वहीँ बैठे थे और १७–१८ वर्ष की उनकी अवस्था थी, परन्तु संगीत का अच्छा अभ्यास होने के कारण जहाँ से गोस्वामी जी का गला रुका, वहाँ से ही श्रीबाबा ने उस तान को खींचकर उसे पूरा कर दिया । गोस्वामी जी ने इसे सुना तो वे आश्चर्यचकित होकर लोगों से पूछने लगे कि इस तान को किसने पूरा किया ? वहाँ बैठे लोगों ने श्रीबाबा की ओर संकेत कर दिया । उस समय गोस्वामी जी श्रीबाबा के पास आये और बहुत प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद देने लगे । तभी से गोस्वामी जी श्रीबाबा से अपार स्नेह करने लगे थे । किशोरी लाल गोस्वामीजी के निधन के पश्चात् श्रीबाबा ने विचार किया कि श्रीजी के मंदिर में समय–समय पर पद गायन की सेवा की जाये, जिससे कि मन्दिर में आने वाले श्रद्धालु दर्शनार्थी लाभान्वित हो सकें । श्रीबाबा स्वयं मन्दिर में एक तानपूरे पर श्रीजी की लीला के पदों का गान किया करते थे परन्तु मन्दिर के गोस्वामी वर्ग की उपेक्षा और उनकी उदासीनता के कारण उन्हें वहाँ अपनी गान सेवा को विवश होकर छोड़ना पड़ा । इसके बाद उन्होंने गायन के माध्यम से समाज का कल्याण करने के लिए श्रीजी के करकमलों से निर्मित गह्वरवन को ही सर्वश्रेष्ठ स्थान समझा । अतः गह्वरवन में संध्याकालीन सत्संग के पश्चात् अपनी कुटिया में श्रीबाबा ने पद गान करने का कार्यक्रम आरम्भ कर दिया, जो आज तक अनवरत् जारी है । वर्तमान समय में तो रसमण्डप भवन में संध्याकाल को प्रतिदिन संगीतमयी आराधना होती है, जिसमें श्रीबाबा महाराज के पद गायन में मानमंदिर की सवा सौ साध्वियाँ अपने इष्ट श्रीअक्षय युगल (श्रीराधा–माधव) को रिझाने के लिए प्रतिदिन डेढ़ घंटे तक नृत्य करती हैं । इस आराधना का प्रभाव दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है । इसका दर्शन करने के

लिए दूर–दूर से श्रद्धालु जन बरसाने आते हैं और इस रसमयी दिव्य आराधना का दर्शन करके अपने जीवन को सार्थक कर रहे हैं। इसी भाव से भावित बाबश्री की संरचना है –

यह पीवै सो अमर है जाए, नाम रस मीठो है .....

इसी तरह मान मन्दिर से प्रति वर्ष संचालित होने वाली श्रीराधारानी ब्रजयात्रा में भी चालीस दिनों तक श्रीबाबा द्वारा रचित शास्त्रीय संगीत की धुनों पर युगल मन्त्र का अखण्ड कीर्तन होता रहता है। रसमय संकीर्तन राधारानी ब्रजयात्रा की सबसे बड़ी विशेषता है। इस संकीर्तन के पीछे भी एक इतिहास है। बहुत सालों पहले तक ब्रज में वल्लभ कुल की ब्रजयात्रा बहुत प्रसिद्ध थी। कई बार तो उस यात्रा में चालीस हजार ब्रजयात्री तक सम्मिलित हुए हैं। इस ब्रजयात्रा का प्रतिवर्ष बरसाने में भी पड़ाव होता था। यह घटना बहुत पुरानी है। उस समय श्रीबाबा महाराज भी नये–नये ही ब्रज में आये थे। एक बार वल्लभ कुल की इस यात्रा के बरसाना आगमन पर श्रीबाबा के मन में यह इच्छा हुई कि यह यात्रा बहुत लम्बे समय से ब्रज परिक्रमा करती रही है। अतः इस यात्रा में सम्मिलित होने वाले किसी ऐसे वैष्णव से भेंट करनी चाहिए, जिन्होंने सबसे अधिक यात्रायें की हों और उनसे मिलकर ब्रजयात्रा के उनके अनुभव को जानना चाहिए। अपनी इसी जिज्ञासा को लेकर बाबाश्री बरसाने में रुकी इस ब्रजयात्रा के पड़ाव स्थल पर पहुँचे और वहाँ के यात्रा प्रबंधकों से कहा कि मुझे इस यात्रा के किसी ऐसे पुराने वैष्णव से मिलाइए, जिन्होंने सबसे अधिक यात्रा की हो। श्रीबाबा के अनुरोध पर वहाँ के एक सज्जन उन्हें उस यात्रा के सबसे पुराने ब्रजयात्री के पास ले गये, जिन्होंने सबसे अधिक ब्रजपरिक्रमायें की थीं। वे वैष्णव बाबा महाराज से बड़े प्रेम से मिले और उन्होंने बताया कि मैंने तीस से भी अधिक ब्रज यात्रायें की हैं। श्रीबाबा इस बात से बहुत प्रभावित हुए और उनसे कहा कि आपको इतनी अधिक ब्रजयात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो आप मुझे इन यात्राओं में हुए अपने किसी विशेष अनुभव को सुनाइये। बाबा महाराज की बात को सुनकर वे वैष्णव बोले कि मैं आपको अपना अनुभव क्या सुनाऊँ, आप तो श्रीजी के धाम बरसाना में अखण्डवास करने वाले महात्मा हैं। मेरी एक समस्या है, पहले आप उसका समाधान कर दीजिये। श्रीबाबा ने पूछा कि आपकी क्या समस्या है ? तब उन वैष्णव ने कहा कि जब मैं पहले–पहले ब्रजयात्रा करने आता था और जब यात्रा कामवन से होते हुए बरसाना में प्रवेश करती थी तो दूर से ही श्रीजी मंदिर के शिखरों को देखकर मेरे नेत्रों से अश्रु विसर्जन होने लगता था, मैं अत्यधिक भावुक होकर सोचने लगता था – ओहो ! यही है बरसाना धाम, ये है श्रीकृष्णवल्लभा वृषभानुनन्दिनी का महल। ब्रजमण्डल की अधीश्वरी, ब्रज की महारानी श्रीराधारानी इसी महल में अपने माता–पिता के साथ विराजती हैं। यहीं से सम्पूर्ण ब्रज में उनकी अलौकिक लीलाओं का प्रकाश होता है। इस प्रकार सोचते–सोचते मैं दिव्य भावों में निमग्न हो जाता था। मेरी ऐसी दशा प्रायः हर यात्रा के अन्त में बरसाने के श्रीजी मन्दिर का दूर से दर्शन करने पर होती थी परन्तु बड़े दुःख की बात है, अब कुछ वर्षों से जब मैं परिक्रमा कर रहा हूँ और बरसाना आगमन पर जब श्रीजी मंदिर का दर्शन होता है तो पहले जैसे भाव मेरे मन में नहीं आते हैं, ऐसा लगता है कि अब ब्रज के प्रति मेरा पहले जैसा भाव नहीं रहा। मैं अपनी इस स्थिति से अत्यधिक व्यथित हूँ। आप एक महात्मा हैं और कई वर्षों से बरसाना में अखण्ड वास कर रहे हैं। अतः आप मेरी इस दशा का कारण और उसका समाधान बताइये। उन वैष्णव के प्रश्न का उत्तर देते हुए श्रीबाबा महाराज ने कहा कि कोई साधक जब पहली बार ब्रज में आता है तो इस दिव्य भूमि और यहाँ के ब्रजवासियों के प्रति उसके मन में बहुत ही उत्तम भाव उत्पन्न होते हैं परन्तु शनैः–शनैः इन भावों का लोप भी होने लगता है। इसका प्रमुख कारण है अच्छे संग का, भावोद्दीपन करने वाली वस्तुओं अथवा साधन का अभाव। श्रीबाबा ने बताया कि आप लोगों की इस ब्रजयात्रा में लोगों की भौतिक सुख–सुविधा का विशेष ध्यान रखा जाता है। आवास के लिए बढ़िया तम्बू, बढ़िया भोजन और अन्य भी सुविधाओं का विशेष रूप से प्रबन्ध किया जाता है। भौतक वस्तुओं को खरीदने के लिए एक छोटे से बाजार का भी प्रबन्ध किया जाता है, जहाँ अधिकतर समय ब्रजयात्री अपनी आवश्यकता और इन्द्रिय तृप्ति की वस्तुओं को खरीदने और सांसारिक चर्चाओं को करने में ही लगे रहते हैं जबकि भाव को जागृत करने के लिए एक ऐसे वातावरण की आवश्यकता होती है, जहाँ भगवान् के नाम, गुण, महिमा का अहर्निश

गान होता रहे । रसमय संगीत के साथ निरन्तर भगवद् गुणगान होते रहने से हृदय में विशेष भावोद्दीपन होता है । कानों में निरन्तर भगवदीय रस के श्रवण से चित्त के कलुषित संस्कारों का शमन होता है और तभी भगवान् के प्रति दिव्य भाव और प्रेम का उदय होता है – **"अशेषसंक्लेश शमं विधत्ते गुणानुवाद श्रवणं मुरारेः ।"** आपकी यात्रा में अखण्ड रूप से कीर्तन नहीं होता है । जब तक निरन्तर किसी ऐसे साधन का चित्त से संयोग नहीं होता जो उसके कालुष्य का शोधन कर सके और भावराशि को जाग्रत कर सके तब तक केवल भौतिक सुख–सुविधा के साधन चित्त के भगवदीय संस्कारों का पूर्णतया विनाश कर जीव को भगवान् से विमुख कर देते हैं । श्रीबाबा के इस उत्तर को सुनकर वे वैष्णव बहुत प्रभावित हुए । उनसे मिलने के बाद श्रीबाबा ने मानमंदिर के वातावरण में निरन्तर भावोद्दीपन करने वाले लोकोपकारी साधनों के समावेश करने का दृढ़निश्चय किया । विशेष रूप से जब मान मन्दिर द्वारा ब्रजयात्रा संचालित करने का कार्यक्रम बना तो सर्वप्रथम श्रीबाबा ने इसे पूर्णतया निःशुल्क यात्रा के रूप में स्थापित किया एवं दूसरी सबसे बड़ी विशेषता के बारे में बाबा ने यही विचार किया कि ब्रजपरिक्रमा के दौरान यात्रियों को चालीस दिनों तक सतत् रसमय संकीर्तन से जोड़े रखा जाये। उनके इस दृढ़निश्चय का परिणाम है कि मान मन्दिर की चालीस दिनों की वार्षिकी ब्रजयात्रा में शास्त्रीय धुनों पर आधारित युगल मन्त्र संकीर्तन की सुमधुर धुनों का चौबीसों घंटे गायन होता रहता है। शयन करते, भोजन करते, शरीर की अन्य क्रियाओं को करते प्रतिदिन हर समय यात्रियों के कर्णकुहरों में संकीर्तन की सर्वमंगलकारी ध्वनि प्रवेश करती रहती है, जो उनके हृदयगत विकारों का समूल नाश कर उनके हृदय में धाम और धामी के प्रति सुदृढ़ प्रीति को उत्पन्न करती है। अहर्निश कीर्तन का ही यह परिणाम होता है कि चालीस दिनों तक प्रतिदिन १४–१५ किलोमीटर की लम्बी यात्रा करने पर भी यात्रियों को किसी प्रकार की मानसिक खिन्नता तथा शारीरिक क्लेश का बोध नहीं होता है । चालीस दिन सहजता से ही थोड़ी देर में कैसे व्यतीत हो जाते हैं, इसका आभास ही नहीं हो पाता है। मधुर गान युक्त सरस परिवेश दूर–दूर से आये पन्द्रह हजार से अधिक ब्रजयात्रियों को चालीस दिनों तक भावनात्मक एकता और प्रेम के सूत्र में पिरोये रहता है। पारस्परिक वैमनस्य और कलह का अभाव हो जाता है। अष्टयाम संकीर्तन की ध्वनि वातावरण को ऐसा सरस बनाये रखती है कि जब यात्रा के समापन का समय आता है तो ब्रजयात्री धाम से वियोग होने पर एक–दूसरे से आलिंगनबद्ध होकर फूट–फूटकर रोते हैं और घर पहुँचने पर भी वे बारम्बार ब्रजयात्रा की स्मृति में भावविभोर होते रहते हैं । कितने ही यात्री पत्रों अथवा फोन द्वारा सूचित करते हैं कि हमें कई दिनों तक स्वप्न में भी राधारानी ब्रजयात्रा का दर्शन होता है। ब्रजभूमि का वातावरण प्राचीन काल से श्रीकृष्ण लीला–यश गान से परिपूर्ण रहा है । ब्रजवासी अपने दैनिक क्रियाकलापों को करते हुए भी ब्रज के पारम्परिक लोकगीतों (ब्रज–रसियायों) को अत्यन्त उत्साह के साथ गाया करते थे। जब श्रीबाबा का ब्रजभूमि में प्रथम बार पदार्पण हुआ और उन्होंने अकेले ही ब्रजचौरासी कोस की परिक्रमा की तो उन्होंने देखा कि उस समय गाँवों में नवयुवकों की कीर्तन मण्डली हुआ करती थी। मल्लविद्या के अखाड़ों में भी व्यायाम और कुश्ती लड़ने के पश्चात् ब्रजवासी नवयुवक बड़े उत्साह के साथ ब्रज के रसिया गाया करते थे । विगत पचास वर्षों से मुम्बई के सिनेमा उद्योग ने अपने काम कलुषित गीतों के द्वारा ब्रज की संस्कृति में कुठाराघात करना आरम्भ कर दिया है । टेलीविजन और आधुनिक मोबाइलों के माध्यम से ब्रज की संस्कृति के नाशक फिल्मी गानों के प्रसारण में बड़ी तेजी से वृद्धि हुई और इसके दुष्प्रभाव से ब्रज का युवा वर्ग आज ब्रज के रसियाओं के गायन की अपनी परम्परागत शैली से विमुख होता जा रहा है । श्रीबाबा ने ब्रजवास के अपने प्रारम्भिक काल में ही ब्रजवासियों के लाभ के लिए ब्रज के लोकगीतों के प्रचार–प्रसार हेतु श्रीराधा–माधव की लीलाओं से भरपूर साहित्य 'रसिया–रासेश्वरी' की रचना की । ब्रज के रसियाओं के संग्रह का यह सर्वाधिक विस्तृत प्रकाशन है। ब्रज के लोकगीतों का इतना विस्तृत संग्रह ब्रज से प्रकाशित किसी अन्य साहित्य में आज तक नहीं हुआ। श्रीबाबा महाराज की हार्दिक अभिलाषा है कि ब्रजभूमि में इन रसियाओं का अच्छी तरह से प्रचार किया जाये ताकि ब्रजवासी फ़िल्मी गानों के विष–वमन से बचे रहें और अपनी ब्रजसंस्कृति के साथ मजबूती के साथ खड़े रहें... ।

महारास का स्वरूप

बाबाश्री द्वारा निः सृत श्रीभागवत-कथा (फरवरी १९८५) से संकलित

इत्थं भगवतो गोप्यः..... ।

(श्रीभागवतजी १०/३३/१)

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जब गोपियों ने अपने प्राणवल्लभ श्यामसुन्दर की सुमधुर वाणी सुनी तब उनके विरह का सारा ताप दूर हो गया ।

श्रीकृष्ण बोले – चलो, अब मैं वह रस प्रवाहित करूँगा, जिसके लिए पृथ्वी पर अवतार लेकर आया हूँ ।

तत्रारभत गोविन्दो..... (श्रीभागवतजी १०/३३/२)

इस श्लोक में गोपियों के लिए 'स्त्रीरत्न' शब्द का प्रयोग हुआ है । ऐसा क्यों तो वल्लभाचार्यजी ने लिखा है – यह जो अलौकिक रस है, यह लौकिक स्त्रियों में नहीं उत्पन्न हो सकता । लौकिक स्त्री कितनी भी ऊँचाई को प्राप्त कर ले, अलौकिक रस को नहीं प्राप्त कर सकती है । इसलिए यहाँ गोपियों के लिए 'स्त्रीरत्न' शब्द कहा गया है ।

इस प्रकार गोपियों को प्रसन्न करके भगवान् ने रास-क्रीड़ा प्रारम्भ की । भगवान् श्रीकृष्ण दो-दो गोपियों के बीच में प्रकट हो गये । कुछ आचार्यों ने बताया है कि 'हल्लीशक नृत्य' में जैसे एक नायक की बहुत-सी नर्तकी नायिकायें होतीं हैं । कुछ आचार्यों ने नायक को भी बहुवचन में बताया है कि बहुत से नायक होते हैं । इस तरह से उन्होंने रास-नृत्य को समझाने की कोशिश की है परन्तु 'हल्लीशक' भी लौकिक शब्द है । रास में तो कृष्ण एक हैं और वे ही अनेक रूप धारण करके प्रत्येक गोपी के साथ नृत्य करते हैं । इसलिए जैसा 'हल्लीशक' में कुछ आचार्यों ने बताया कि उसमें नायक भी अनेक होते हैं तो इस नृत्य की 'रास के नृत्य' से कोई तुलना नहीं की जा सकती है । इसी प्रकार एकवचन भी नहीं घट सकता कि एक नायक है और बहुत-सी नायिकायें हैं । अतः 'रास के नृत्य' का स्वरूप तो पूर्णतया अलौकिक ही है । इसकी व्याख्या तो की ही नहीं जा सकती है । फिर भी 'रास के नृत्य' में नृत्य इस प्रकार किया जाता है कि कृष्ण दूर नहीं जाते हैं, इसमें इस प्रकार से नाचा जाता है कि 'कृष्ण' एक क्षण के लिए भी दूर नहीं होते हैं । इतनी चंचल गति से 'रास' में नाचा जाता है कि गोपियाँ एक जगह पर रुकती भी नहीं हैं तथा एक क्षण को भी उनका 'कृष्ण' से वियोग भी नहीं होता है तथा सबके हाथ एक-दूसरे से परस्पर मिले भी रहते हैं । एक जगह स्थिर न रहने से नृत्य के सारे आवर्त होते जाते हैं । ऐसा नृत्य इस लोक में कहाँ से हो सकता है ? लोक में इतना ही हो सकता है कि एक का हाथ पकड़कर दूसरे के हाथ के नीचे से निकला जा सकता है । लोक में तो नृत्य के सभी अंग पूर्ण नहीं हो सकते हैं, सब अंग करने से हाथ छूट जायेंगे । इसीलिए जीवगोस्वामीजी ने 'रास के नृत्य' के बारे में पहले ही कह दिया है कि ऐसा 'नृत्य' पृथ्वी में तो क्या, स्वर्ग में भी नहीं हो सकता है; इसलिए ऐसा समझना चाहिए कि रास के नृत्य का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता है ।

अस्तु, 'रासोत्सव' के दर्शन की लालसा से देवगण आकाश में आ गये, दुन्दुभियाँ बजने लगीं, आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी ।

'नृत्य' का ऐसा नियम है कि जब अच्छे 'नृत्यकार' नृत्य करते हैं तो पहले डफ बजता है और जो मृदंग या तबला बजाने वाला होता है, वह बहुत देर तक उसे बजाता है – धाकिट् धाकिट् धाकिट् धाकिट् धान् धान् धान् धान्.....और उस समय नायिका एक ही मुद्रा में भावोद्दीपन के लिए खड़ी रहती है; यह नृत्य की पूर्व भूमिका है – पहले वाद्य, पहले वाद्य बजता है, उसके बाद नृत्य का आरम्भ होता है, यह क्रम है; ऐसा नहीं कि वाद्य बजने के पहले ही नाचने लग गये, वह गँवारपना है क्योंकि संगीत इसी को कहते हैं – **"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते ।"** पहले गाना, बजाना, उसके बाद नृत्य करना । इसीलिए 'रासोत्सव' के प्रारम्भ में सबसे पहले बड़े-बड़े गन्धर्वपतियों ने गायन करना आरम्भ किया, उनकी स्त्रियाँ भी गाने लगीं ।

जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् –

(श्रीभागवतजी १०/३३/५)

संगीत में ऑर्केस्ट्रा की सबसे पहले आवश्यकता होती है। कोई नृत्य करता है, उसके लिए भी ऑर्केस्ट्रा की जरूरत होती है। फिल्मों में गायक जब गाता है तो तीन–तीन सौ वाद्य बजाने वाले, ऑर्केस्ट्रा वाले बजाते रहते हैं; गाने वाला एक है और तीन सौ व्यक्ति वाद्य बजाते हैं; इतना सब होने पर रस पैदा होता है।

'महारास' के प्रारम्भ में तो स्वर्ग के बड़े–बड़े गन्धर्व अपनी स्त्रियों के साथ आये और गाने लगे। स्वर्ग की ही दुन्दुभियाँ बजने लगीं। इसके बाद 'ब्रजगोपीजनों व रासबिहारीलाल' का नृत्य प्रारम्भ हुआ। बोलो रास बिहारी लाल की जय..... अनन्त गोपियाँ हैं और ताथेई–थेई के साथ अलौकिक नृत्य शुरू हो गया। श्यामसुंदर भी गोपियों के नृत्य के साथ 'लय' मिलाकर नृत्य करने लगे। अब तक स्वर्ग के जितने भी वाद्य – दुन्दुभियाँ और नगाड़े आदि बज रहे थे, गन्धर्वगण गा रहे थे; इन सभी के 'स्वर' यानि शब्द दब गये; ऐसा क्यों हुआ ? ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि रास में प्रत्येक 'गोपी' संगीत की आचार्या हैं और उनका संगीत भी अलौकिक था। 'गोपीजनों व श्रीकृष्ण' ने जब नृत्य करना शुरू किया तो शरीर के पाँच भेदों से नृत्य किया – हस्तक, मस्तक, ग्रीवा, कटि, चरण – इन पञ्च अंगों से पाँच प्रकार के नृत्य तथा इनके अवान्तर भेदों को गोपीजनों ने इतनी तीव्र गति से दिखाया कि

वलयानां नूपुराणां किङ्किणीनां च योषिताम्।
सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥ –

(श्रीभागवतजी १०/३३/६)

इतने कंकण बजे, इतने नुपुर बजे, इतनी किंकिणियाँ बजीं और उनके साथ ही कृष्ण के भी कंकण, नूपुर और किंकिणियाँ बज उठे; इन सबका जब 'तुमुल' शब्द हुआ तो स्वर्ग के वाद्य नगाड़े आदि सब दब गये; ऐसा अलौकिक रास–नृत्य शुरू हुआ।

तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान् देवकीसुतः।
मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा ॥ –

(श्रीभागवतजी १०/३३/७)

इस श्लोक में श्रीकृष्ण के लिए 'देवकीसुत' शब्द का प्रयोग हुआ है, पुराणों के अनुसार यशोदाजी का ही एक नाम 'देवकी' भी था, इसलिए यहाँ 'देवकीसुत' से अभिप्राय 'यशोदासुत' से ही है, वसुदेवजी की पत्नी देवकी से नहीं। नृत्य करते समय ब्रजदेवियों के बीच में श्रीकृष्ण की बड़ी विलक्षण शोभा हुई। गोपिकायें तो सोने की पुतली के समान प्रतीत होतीं थीं तथा यशोदानन्दन 'कृष्ण'उनके बीच में नीलमणि के समान प्रतीत होते थे; अनन्त सोने की पुतलियों के बीच में अनन्त नीलमणियों की मूर्तियाँ नृत्य कर रहीं हों, ऐसी उनकी छटा हुई; वे कैसे नाच रहे थे ? **'पादन्यासैः'** ताल सम आने पर सबके चरण एक साथ सम पर पड़ते थे। अनन्त गोपियाँ नृत्य कर रहीं थीं किन्तु किसी का भी स्वर ताल भंग नहीं हो रहा था। इस संसार में तो पचास लोगों को नृत्य का महीनों तक प्रशिक्षण दिया जाए तब भी उनके नृत्य में कुछ न कुछ गड़बड़ी रहेगी, क्योंकि हम लोग मनुष्य हैं, हमारा मानवी–संगीत है। संगीत भी कई प्रकार का होता है, जैसे – निषाद ग्राम का संगीत स्वर्ग आदि लोकों में गाया जाता है, मृत्यु लोक में यह संगीत है ही नहीं।

"भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासैः" नृत्य के समय गोपियाँ अपनी भुजाओं को उठातीं थीं, कलापूर्ण ढंग से मुस्कुरातीं, तो कभी भौहें मटकातीं; ये सब नृत्य के अंग–प्रत्यंग के विलास हैं। गोपियाँ नाचते–नाचते ताल और स्वर के साथ गातीं भी थीं।

'भागवत के महारास' के प्रसंग में संगीत की कुछ ऐसी बातें बतायीं गयीं हैं जिनको आज तक कोई समझ नहीं पाया, यह अनुसन्धान का विषय है, इसे कुशल संगीतज्ञ भी नहीं समझ सकता है। जिस समय मैं (बाबाश्री) 'प्रयाग संगीत समिति, प्रयागराज' में संगीत की शिक्षा ग्रहण कर रहा था, उस समय मेरी आयु बहुत कम थी। ६०–७० वर्ष पूर्व संगीत की एक नई विधा चली, जिसमें अनेक रागों का मिश्रण करके लोग राग–सागर प्रस्तुत करते, कहीं कुछ करते तो उसकी बड़ी प्रशंसा होती थी; उसी प्रकार भागवत में 'महारास' के प्रसंग में संगीत की ऐसी विधाओं का वर्णन किया गया है, जिन्हें आज तक कोई समझ नहीं सका। जैसे –

उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः।

कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥

(श्रीभागवतजी १०/३३/९)

नृत्य करते हुए गोपियाँ गा भी रहीं थीं, साथ–साथ विहार भी हो रहा था।

"काचित् समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः"

(श्रीभागवतजी १०/३३/१०)

इस श्लोक में 'पाश्चात्य–संगीत' का वर्णन है। 'भारतीय संगीत' और 'पाश्चात्य संगीत' में क्या अंतर है ? 'भारतीय–संगीत' में melody (मैलोडी) है तथा 'पाश्चात्य–संगीत' में harmony (हार्मोनी) है। भारतीय–संगीत वाले melody प्रधान गीत गाते हैं, harmony को नहीं गा सकते हैं। 'भारतीय–संगीतकार' एक पिच को बना करके, एक सप्तक को मान करके, उसी पर बहुत विस्तार करता है; इसे मेलोडी कहते हैं। जबकि 'पाश्चात्य–संगीतज्ञ' एक ही पिच मानकर नहीं चलता है, जैसे – हमने हारमोनियम पर दूसरे काले को 'स' माना है और अन्य व्यक्ति उसी धुन को चौथे काले को 'स' मानकर बजाता है, एक अन्य व्यक्ति पाँचवें काले को 'स' मानकर बजाता है; इस प्रकार अनेकों पिचों को मिलाकर जो एक चीज बजायी जाती है अर्थात् बहुत से मेलोडी मिलकर एक हार्मोनी बनती है, इसे 'पाश्चात्य–संगीत' कहते हैं। जिन्होंने संगीत को सीखा है, वे इस बात को जानते हैं; इसीलिए पश्चिमी–संगीत का नोटेशन अलग तरह का होता है। कौन–सी पिच से कौन–सा स्वर उठ रहा है, नोटेशन (स्वर–संकेत–सारणी) में उसके चिह्न बनाये जाते हैं।

अब श्रीभागवतजी के श्लोक (१०/३३/१०) में कहा गया है – **"काचित् समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः"** कोई गोपी कृष्ण के साथ गा रही है, 'समम्' का अर्थ है कि वही धुन गा रही है, जिस धुन को कृष्ण गा रहे हैं। 'स्वरजाती' का अर्थ है कि वही स्वर की जाति ली गयी है किन्तु अमिश्रित है। 'अमिश्रित' का अर्थ है कि उसी पिच से न उठाकर कोई दूसरी पिच चल रही है। **'स्वरजातीरमिश्रिताः'** (स्वरजातीः अमिश्रिताः)– यानि वह चीज कुछ और ही हो गई; यहाँ तक तो समझ में आ जाता है कि यह 'हार्मोनी' थी किन्तु यहाँ से आगे समझ में आना कठिन हो जाता है।

गोपियों ने 'मेलौडी' से 'हार्मोनी' बनाई और 'हार्मोनी' से ऊपर उठाकर वे कुछ और विलक्षण गति की ओर ले गयीं – 'उन्निन्ये' हार्मोनी से भी और ऊपर की ओर स्वर उठा दिया; अब यह कौन–सी स्वर जाति बनी, इसका कुछ भी पता नहीं क्योंकि 'उन्निन्ये' का अर्थ यदि यों करें कि गोपी स्वर को और ऊपर उठाकर तार सप्तक तक ले गयी तो ये तार सप्तक तो हो नहीं सकता क्योंकि पहले ही कह दिया गया है कि यह अमिश्रित तान है, इसके सप्तक दूसरे हैं। अतः यह संगीत की कौन–सी विधा है, इसे कोई समझ नहीं सकता। विश्व भर के संगीतज्ञ मिलकर भी भागवत के इस प्रसंग में ये नहीं समझ सकते कि इनमें संगीत की कौन–कौन सी विधायें हैं, यदि वे ईमानदारी से विचार करें तो; यदि कोई बेईमानी से दावा करता है कि हम समझ गये तो उसकी बात ही कुछ और है किन्तु ईमानदारी की बात यही है कि इसे कोई समझ नहीं सकता है। अस्तु, महारास का वर्णन करते हुए आगे शुकदेवजी कहते हैं –

तदेव ध्रुवमुन्निन्ये... (श्रीभागवतजी १०/३३/१०)

कोई अन्य गोपी उसी राग को ध्रुपद में बनाके पहले वाली गोपी से भी 'स्वर' को और ऊपर उठा ले गयी क्योंकि ये यहाँ पर सब अनन्त ग्राम आ गये हैं – षड् ग्राम, मध्यम ग्राम, निषाद ग्राम इत्यादि। 'निषाद ग्राम' तो देवलोक में है। 'स्वर' को यदि 'षड् ग्राम' से उठाया और 'मध्यम ग्राम' तक ले गये, इससे अधिक इस संसार में कोई नहीं गा सकता है; कोई देवता इससे भी ऊपर उठाकर 'निषाद ग्राम' तक ले जायेगा किन्तु उससे भी ऊपर उठाकर कहाँ ले जायेगा, उससे ऊपर तो कोई स्वर को ले ही नहीं जा सकता। अस्तु, इस तरह से गोपी द्वारा गाने पर श्यामसुंदर ने उसका सम्मान किया और कहा कि धन्य है तेरी कला। श्रीकृष्ण ने गोपी की कला का बहुत मान–सम्मान किया ...।

सुमंगल की पहिचान 'गौ–संवृद्धि'

मुरलिकाजी द्वारा कथित 'श्रीभागवत–सप्ताह कथा' से संकलित

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – केशी और व्योमासुर का कृष्ण के द्वारा वध होने पर 'अक्रूरजी' को ब्रज के लिए प्रस्थान करना ही पड़ा; मथुरा में रात भर वे यही चिन्तन करते रहे कि पता नहीं 'श्रीकृष्ण' मेरे हृदयगत भावों को समझेंगे कि नहीं, कहीं वे मुझे अपना शत्रु न समझ बैठें। फिर सोचते हैं कि नहीं, वे मुझे शत्रु नहीं समझेंगे, वे तो भगवान् हैं, अन्तर्यामी हैं, अतः वे सब कुछ जानते हैं। प्रातःकाल होने पर 'अक्रूरजी' रथ पर सवार होकर नन्दबाबा के 'ब्रज' की ओर चल दिए, मार्ग में वे इस प्रकार सोचने लगे –

किं मयाऽऽचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ।
किं वाथाप्यर्हते दत्तं यद् द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥

(श्रीभागवतजी १०/३८/३)

न जाने मेरे कौन–से जन्मों का सुकृत उदय हो गया, जिससे मुझे आज श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त होगा; ऐसा कौन–सा मैंने तप किया, कौन–सा सदाचरण किया अथवा कौन–सा दान दिया, जिनके फलस्वरूप आज मुझे 'कृष्ण' का दर्शन प्राप्त होने वाला है।

अक्रूरजी बहुत प्रसन्न हो गये, ब्रजप्राप्ति और कृष्ण–दर्शन–प्राप्ति के विचार से उनकी ऐसी विचित्र स्थिति हो गयी कि वे बार–बार कभी आगे बढ़ते, कभी पीछे लौट आते; उनको यह भी याद नहीं रहा कि किस मार्ग से जाना चाहिए, कहाँ जाना चाहिए ? जब देह का ही अनुसन्धान उन्हें नहीं रहा तो फिर मार्ग का अनुसन्धान कैसे होता ? अक्रूरजी बार–बार राहगीरों से पूछ लेते कि ब्रज–वृन्दावन के लिए कौन–सा मार्ग बढ़िया है ? राहगीरों के बताने से जैसे–तैसे भोर के चले हुए अक्रूरजी को ब्रज पहुँचने में संध्या हो गयी। संध्या समय जब अक्रूरजी नन्दगाँव पहुँचे तो उन्होंने विचार किया कि मुझे कृष्ण–दर्शन करने हैं तो सबसे पहले उनका दर्शन कहाँ होगा ? तब तक उन्हें श्रीकृष्ण के चरणचिह्न पृथ्वी पर अंकित दिखायी पड़े। उन चरणचिह्नों के दर्शन करते ही अक्रूरजी का हृदय आनन्द और प्रेम के आवेग से भर उठा, वे रथ से कूदकर उस धूलि में लोटने लगे और बार–बार उस चरणधूलि का अपने सर्वांग में लेपन करने लगे। कभी मस्तक से लगाते, कभी वक्षःस्थल से लगाते तो कभी उदर से लगाते। पूरे शरीर में अक्रूरजी 'कृष्ण–चरणरज' का लेपन करने लगे। नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, हृदय में 'कृष्ण–दर्शन' की तीव्र उत्कंठा होने लगी, थोड़ी देर में ही उन्हें 'कृष्ण–दर्शन' प्राप्त होने वाला है, इसलिए मन में बड़ी भारी प्रसन्नता है। अक्रूरजी सोचने लगे कि श्रीकृष्ण का दर्शन करने कहाँ जाऊँ, या तो वे गोचारण के लिए गये होंगे अथवा नन्दभवन में होंगे अथवा गो–खिरक में होंगे। गोधूलि–बेला थी, अक्रूरजी ने देखा कि ब्रज में चारों ओर गायों के चरणों से उठने वाली धूल उड़ रही है।

'ब्रजभूमि' की इतनी महिमा क्यों है, 'ब्रज' इतना पवित्र देश क्यों है, इसका कारण यही है कि जब संध्या समय श्रीकृष्ण लाखों गायों से, ग्वालबालों से समावृत होकर लौटते थे तो गायों के खुरों से जो धूल उड़ती थी, उस गोधूलि से सारा 'ब्रज' स्नान किया करता था। इसीलिए 'ब्रज' परम पवित्र देश हुआ। जब अक्रूरजी ने देखा कि चारों ओर गोधूलि उड़ रही है तो वे समझ गये कि 'श्रीकृष्ण' गौचारण करके अब वन से 'ब्रज' को लौट रहे हैं। इसलिए उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब तो मैं सीधे गौ–खिरक में ही जाऊँगा। उन्होंने अपने रथ को गौ–खिरक की ओर बढ़ाया। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि समुद्रवत् गायों की बड़ी भारी संख्या है, चारों ओर गायें ही गायें हैं। उन गायों के मध्य ग्वालबालों की मण्डली है और ग्वालबालों के मध्य में दोनों भैया श्रीकृष्ण–बलराम खड़े हुए हैं। कृष्ण–बलराम की रूपमाधुरी का पान करके अक्रूरजी से रहा नहीं गया, वे सोचने लगे कि देखो तो सही गोपाल और हलधर भैया को, कैसे ये गायों से समावृत होकर खड़े हैं। इनको गायों के बीच में खड़ा होना, गायों के बीच में रहना कितना प्रिय है। वस्तुतः कृष्णावतार तो हुआ ही गायों के लिए है। गोवंश की रक्षा,

गोवंश की सेवा – बस इन्हीं कारणों से कृष्णावतार हुआ। भगवान् ने अवतार लेकर गो–सेवा करायी ही नहीं, गो–सेवा स्वयं की। 'गिरिराज' धारण करके गायों की रक्षा की, इसीलिए उनका नाम ही 'गोविन्द' हो गया, गायों से उन्हें इतना प्रेम है। अक्रूरजी दूर से विलक्षण छटा को देखने लगे, कृष्ण–बलराम पीताम्बर और नीलाम्बर धारण किये हुए हैं, उनका दर्शन करके अक्रूरजी रथ से उतरकर दौड़ते हुए श्रीकृष्ण के पास गये और उनके चरणों में गिर पड़े। श्यामसुन्दर ने देखा कि अक्रूरजी आये हैं तो 'चाचाजी–चाचाजी' कहकर उन्हें उठाया और अपने हृदय से लगा लिया। 'चाचाजी' सम्बोधन सुनते ही अक्रूरजी का हृदय गद्गद हो गया, वे सोचने लगे कि श्रीकृष्ण मेरे भाव को जान गये, इन्होंने मुझे आत्मीय (अपना) बना लिया, इससे बड़ी उपलब्धि मेरे लिए और क्या होगी। श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी ने अक्रूरजी का भलीभाँति सम्मान किया। श्रीकृष्ण ने अक्रूरजी से कंस के अगले कार्यक्रम के बारे में पूछा। उन्होंने (अक्रूरजी) सोच लिया कि चाहे कुछ भी हो जाये, मैं प्रभु से झूठ नहीं बोलूँगा, उन्होंने श्यामसुन्दर से सच्ची बात बताते हुए कहा कि प्रभो ! नारदजी ने सब बना–बनाया काम बिगाड़ दिया, उन्हें कंस को यह बताने की क्या आवश्यकता थी कि आप देवकी के आठवें पुत्र हैं। अब तो वह दुष्ट दैत्य आपको मारने के लिए कटिबद्ध हो गया है और इस जघन्य कृत्य के लिए उसने मुझे यहाँ भेजा है। यज्ञोत्सव के बहाने आप दोनों भाइयों को वह मथुरा बुलाना चाहता है और वहाँ मल्ल–क्रीड़ा के द्वारा आप दोनों को मरवाना चाहता है। मैंने तो आपसे सत्य बात कह दी, अब आपको जो उचित लगे, उसे आप करें। भगवान् श्रीकृष्ण ने हँसते हुए अक्रूरजी से कहा – "चाचाजी ! आप चिन्ता न करें। मामाजी ने बुलाया है तो मैं अवश्य जाऊँगा, इस बहाने मथुरा भी घूम लूँगा, कभी मथुरा जाने का अवसर नहीं मिला, प्रथम बार मथुरा में गमन होगा किन्तु आप इस बात का ध्यान रखें कि नन्दबाबा को यह पता न चल जाये कि कंस मुझे मारना चाहता है, यदि उन्हें इस बात का पता चल गया तो फिर वे मुझे मथुरा कभी नहीं भेजेंगे।" अक्रूरजी ने नन्दबाबा से तो वही बातें कहीं जो कंस ने उन्हें कहने के लिए भेजा था कि मथुरा में यज्ञोत्सव है, महाराज कंस ने उसे देखने के लिए आप सभी को आमन्त्रित किया है, आप सभी मथुरा पधारें और उस उत्सव का दर्शन करके आनन्द लें। अक्रूरजी की बात सुनकर नन्दबाबा को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा कि कंस ने प्रसन्न होकर हम लोगों को निमंत्रण भेजा है, यह तो बड़ी अच्छी बात है। नन्दबाबा ने रात को ही ब्रजवासियों को यह घोषणा करवा दी कि कल राम–कृष्ण मथुरा जायेंगे, सभी ग्वालबाल समय से तैयार रहें। जो गोरस घर में रखा हो, उसे एकत्रित कर लें, उसी दौरान हम लोग कंस को वार्षिक कर भी चुका आयेंगे। सम्पूर्ण ब्रज में चारों ओर यह सूचना फ़ैल गयी। ग्वालबालों ने यह समाचार सुना तो वे एक–दूसरे से कहने लगे कि तूने नहीं सुना, कल कन्हैया मथुरा जा रहा है। जा तो रहा है किन्तु हम मना कर देंगे तो वह नहीं जायेगा। 'ऋषभ सखा' जो कृष्ण से आयु में बड़ा था, वह बोला – "मैं कन्हैया से बड़ा हूँ, वह मेरी हर बात का मान रखता है, मैं उसे मना कर दूँगा तो कन्हैया मथुरा की ओर पाँव करके भी नहीं सोयेगा और तुम लोग उसके मथुरा जाने की बात कह रहे हो। कन्हैया को मैं मथुरा नहीं जाने दूँगा। जब तक हम लोग यहाँ रहे, कन्हैया के साथ ही हमने खाया–पिया, खेले–कूदे। अब कन्हैया के बिना हम यहाँ रहकर क्या करेंगे।" एक सखा ने ऋषभ से पूछा कि यदि कन्हैया ने तेरी बात नहीं मानी तब फिर क्या होगा ? ऋषभ ने कहा कि यदि कन्हैया नहीं रुका तो फिर हम सब भी उसके साथ चलेंगे, वह रथ पर बैठकर जायेगा तो हम पैदल चलेंगे परन्तु कन्हैया को अकेले नहीं जाने देंगे।

ग्वालबालों की समस्या का तो समाधान हो गया किन्तु वे 'ब्रजदेवियाँ' जो कृष्ण को सर्वात्मसमर्पण कर चुकी थीं, अभी कृष्ण–दर्शन से उनका मन तृप्त भी नहीं हुआ था कि वियोगावस्था सामने आ गयी। सभी ब्रजगोपियाँ बैठकर परस्पर चर्चा करने लगीं। कृष्ण का मथुरागमन ब्रज में एक बहुत बड़ी चर्चा का विषय बन गया। एक गोपी ने अपनी सखी से कहा – "अरी ! कल कृष्ण मथुरा चले जायेंगे।" दूसरी गोपी ने कहा – "तो क्या हुआ ? वैसे भी हमें दिन भर कृष्ण का दर्शन नहीं मिलता है। दिन में गोचारण के कारण वैसे भी हमें कन्हैया का वियोग ही रहता है।" तीसरी गोपी ने कहा – "जब गोचारण के लिए कन्हैया जाते हैं तो संध्या के समय उनके आगमन की प्रतीक्षा का हमें सहारा तो रहता है किन्तु यदि वे मथुरा चले गये तो फिर हम कौन–सी आशा धारण करेंगी, कृष्ण के कौन–से आगमन की

प्रतीक्षा करेंगी, जिसके सहारे अपने प्राणों को जीवित रखेंगी। अब तो कृष्ण की प्रतीक्षा की हमारी आशा भी नष्ट हो जाएगी। हम कृष्ण के बिना कैसे रहेंगी ?" एक अन्य गोपी ने कहा कि मैंने तो कन्हैया को रोकने का पूर्ण निश्चय कर लिया है, रथ के जाने का एक ही मार्ग है। घर के बन्धु–बान्धव यदि रोकें तो रोकते रहें परन्तु मैं कल कन्हैया को मथुरा नहीं जाने दूँगी। हम सब मिलकर कन्हैया को लौटा लायेंगी। कन्हैया को भी हमारी बात माननी चाहिए। जाने से पहले वह भी एक बार सोचेगा कि ब्रजगोपियों के बिना मथुरा में मेरा मन कैसे लगेगा, इन गोपियों का स्मरण मुझे हमेशा सतायेगा फिर मैं मथुरा जाकर क्या करूँगा ?

इधर यशोदा मैया को रात भर नींद नहीं आई, बिस्तर पर बार–बार करवट बदलती रहीं। सबेरा होने पर वे उठकर रोने लगीं। मैया का रुदन गोपालजी से देखा नहीं गया, वे दौड़कर मैया के पास गये और उनके आँसू पोंछते हुए बोले कि मैया ! तू इतना क्यों रो रही है ? मैया बोलीं – "लाला ! तू मथुरा जा रहा है। अब मैं तेरे बिना कैसे रहूँगी, किसको अपने साथ सुलाऊँगी, किसको अपने हाथ से भोजन कराऊँगी। यदि तूने मथुरागमन किया तो मेरा मन अत्यधिक शोकाकुल हो जायेगा, इसलिए तू ब्रज छोड़कर मत जा।" श्यामसुन्दर ने कहा – "मैया ! यदि तू मेरी पूछे तो मेरे मन में तो मथुरा जाने की बिलकुल भी इच्छा नहीं है, परन्तु बाबा ऐसा चाहते हैं कि हम दोनों भैया इसी बहाने मथुरापुरी घूम आयें क्योंकि इस प्रकार का आना–जाना बार–बार तो होता नहीं है, मथुरा दूर भी है; इसलिए अब बाबा के साथ घूमना भी हो जायेगा। तू चिन्ता मत कर, दो दिन के बाद मैं लौट आऊँगा। तेरे बिना मेरा मन वहाँ कैसे लगेगा।" मैया ने अपने लाला का श्रृंगार किया। कन्हैया की आँखों में अंजन लगाया, मस्तक पर तिलक लगाया, उसके केशों को सँवारा। इसके बाद मैया ने अपने हाथों से कन्हैया को भोजन कराया। मैया ने मन में यह भी सोचा कि कहीं ये वह अवसर तो नहीं है कि मैं अपने कन्हैया का अन्तिम दर्शन कर रही हूँ। कहीं ऐसा न हो कि आज के बाद मुझे अपने कन्हैया का कभी दर्शन ही न हो। कहीं ऐसा ही अवसर तो नहीं आ गया ? मैया रोती भी जा रही है और अपने लाला को भोजन भी खिलाती जा रही है। उसी समय अक्रूरजी रथ लेकर द्वार के सामने आ गये। दाऊ भैया मैया को प्रणाम करके रथ पर बैठ गये। श्यामसुन्दर ने भी जब यशोदा मैया को प्रणाम किया और जाने की अनुमति माँगी तो मैया ने कहा – "लाला ! तू थोड़ी देर और रुक जा, मैं तुझको ऐसे नहीं जाने दूँगी। मैया यशोदा ने बड़े–बड़े ज्योतिषियों को बुलाया और उनसे कहा कि तुम सब बढ़िया–सा मुहूर्त देखो, कौन–सा मुहूर्त मेरे लाला की यात्रा को मंगलमय करेगा, मैं उसी मुहूर्त में लाला को यहाँ से भेजूँगी क्योंकि मेरा लाला शत्रु की नगरी में जा रहा है, असुर की नगरी में जा रहा है, कहीं वहाँ उसका अनिष्ट न हो जाये। मथुरा से कंस के भेजे बड़े–बड़े असुर यहाँ आये और वहाँ तो ऐसे बहुत से असुर हैं, मथुरा तो असुरों का पूरा गढ़ है। मेरा लाला असुरों की नगरी में जा रहा है तो बढ़िया से मुहूर्त में इसका प्रस्थान होना चाहिए जिससे कि इसका कोई अमंगल न हो, मंगल ही मंगल हो।" ज्योतिषी आये और यशोदाजी से बोले – "मैया ! तू चिन्ता मत कर। तेरा बालक मथुरा में जाकर असुरों का वध ही करेगा, उन पर विजय प्राप्त करेगा। इतना ही नहीं, कंस का भी वध करके यह लक्ष्मीपति बन जायेगा।" ज्योतिषियों की बात सुनकर मैया को बड़ी प्रसन्नता हुई, उन्हें थोड़ा धैर्य हुआ। मैया ने सोचा कि चलो, मेरे लाला के वहाँ जाने से मंगल ही होगा, उसका कुछ अनिष्ट नहीं होगा। श्यामसुन्दर ने कहा – " मैया ! तू देख, हमारे यहाँ गोधन बढ़ रहा है, गायों की वृद्धि हो रही है। गायों के उत्कर्ष (बढ़ने) का लक्षण यही है कि जिस देश में गायों की वृद्धि होती है, उस देश का, वहाँ के निवासियों का कभी अमंगल नहीं होता है। इसलिए जब तक गौवंश संपोषित–संवर्द्धित होता रहेगा तब तक हम सब ब्रजवासियों का कोई भी अनिष्ट (अमंगल) नहीं कर पाएगा ...।"

जब महापुरुष (भक्त) भगवान् की कथा–लीला कहते हैं तब उनके कहने से जीव के हृदय में रस आता है, महापुरुषों के मुख से जो हवा निकलती है उससे जीव को 'स्मृति' मिलती है, जिसे ध्रुवास्मृति कहते हैं। वह ध्रुवास्मृति भगवान् का अखण्ड स्मरण कराएगी।(भा. ४/२०/२५)

परम लाभ 'रसिकों का सानिध्य'

श्रीमुरलिकाजी के सत्संग से संकलित

स्वामी हरिदासजी के रूप में स्वयं महासखी श्रीललिताजी आयीं, महासखी 'श्रीविशाखाजी' श्रीहरिरामव्यासजी के रूप में आयीं और श्रीराधा–श्यामसुंदर के प्रेम का प्रतीक जो वंशी है, वह वंशी ही श्रीहिताचार्य हरिवंशजी के रूप में आयी। श्रीभक्तमालजी में हरिवंशमहाप्रभु के बारे में स्पष्ट लिखा है – 'राधाचरणप्रधान अति सुदृढ़ उपासी ।' श्रीहरिवंशमहाराज की उपासना राधाचरणप्रधान थी क्योंकि गुरु के रूप में हिताचार्यजी को मन्त्र–दीक्षा स्वयं श्रीराधारानी द्वारा प्राप्त हुई थी। जिसको मन्त्र देने वाली गुरु स्वयं श्रीराधारानी हों और अपनी ही उपासना की पद्धति के मर्म को जिन्होंने स्वयं समझाया हो और उनकी स्वयं की सहचरी ही श्रीहिताचार्यमहाप्रभु के रूप में प्रकट हुई हों तो उनके द्वारा जो नित्य निकुंज की नित्यविहार की परम गोपनीय उपासना प्रकट हुई; वह हम जैसे साधारण, काम–क्रोध ग्रसित प्राकृत बुद्धि रखने वाले मनुष्यों के लिए सहज अवगम्य नहीं है, समझ में आ जाये, ऐसी नहीं है। निकुंज उपासना के दो सम्प्रदाय सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं – एक तो 'हरिदासी सम्प्रदाय' और दूसरा 'श्रीहरिवंशी सम्प्रदाय'; दोनों सम्प्रदायों की प्रवर्तक आचार्या महासखियाँ ही हैं, इन दोनों की ही निकुंज विहार की उपासना है । स्वामी हरिदासजी की उपासना के सम्बन्ध में एक आचार्य ने लिखा है – **"ललिता सखी उपासना ज्यों सिंहिनी को क्षीर।"** नित्यविहार की जो यह उपासना है, यह शेरनी के दूध की तरह है। जैसे शेरनी का दूध या तो सोने के बर्तन में रखा जा सकता है या फिर शेरनी का बच्चा उसे पचा सकता है, तीसरा अन्य कोई नहीं; यदि अन्य किसी साधारण पात्र में सिंहनी का दूध रख दिया जाए तो पात्र फट जाएगा, नष्ट हो जायेगा, दूध भी फ़ैल जायेगा और पात्र भी नष्ट हो जायेगा। अब दो बातें हैं, या तो कोई शेरनी का बच्चा बन जाए अथवा सोने का पात्र बन जाए। शेरनी का बच्चा जैसे शुकदेवजी आदि की कोटि के महापुरुष थे, इनका हृदय ऐसा निर्मल, निश्छल था कि नग्न स्त्रियाँ इनके सामने स्नान कर रहीं थीं और इनको देखकर उन नग्न स्त्रियों ने वस्त्र तक नहीं पहने । उन्होंने सोचा कि जिसकी दृष्टि में स्त्री–पुरुष का भेद ही नहीं है, उसके सामने क्या वस्त्र पहनें। शुकदेवजी के बूढ़े पिता व्यासजी को देखकर उन सभी स्त्रियों ने वस्त्र पहन लिए क्योंकि अभी उन्होंने अभेद स्वीकार नहीं किया था, उनकी दृष्टि में स्त्री–पुरुष का भेद बना हुआ था। सोलह वर्ष के जवान शुकदेवजी को देखकर स्त्रियों ने वस्त्र नहीं पहने और वृद्ध व्यासजी को देखकर वस्त्र पहन लिए । इसलिए या तो कोई शुकदेवजी की कोटि का शेरनी का बालक बन जाए, वह इस निकुंज–रस को पचा सकता है; इस परम दिव्य रस को या तो शेरनी का बालक पचा सकता है या फिर सोने के पात्र में इस रस को सुरक्षित रखा जा सकता है। सोने का पात्र क्या है ? अब जैसे हिताचार्य महाप्रभु हुए, स्वामी श्रीहरिदासजीमहाराज हुए अथवा श्रीबाबामहाराज की कोटि के महापुरुष हैं; तो शेरनी के बच्चे का मतलब है कि इन अवतरित महापुरुषों का ऐसा आनुगत्य स्वीकार कर लें, हम इनके इतने शरणागत हो जाएँ कि ये स्वयं अपने वात्सल्य से, हमें अपने लाड़ से उस नित्य विहार या उस नित्य लीला रूपी शेरनी का जो दूध है, उसको पचाने का बल (दम) ये हमको स्वयं प्रदान कर दें। या तो तब इन लीलाओं को समझा जा सकता है अन्यथा इसके पूर्व यदि इन लीलाओं को अनधिकार रूप से कोई कहता–सुनता है तो कई बार उसके सामने घोर विनाश की स्थिति भी उपस्थित हो जाती है, उसका घोर विनाश भी हो सकता है क्योंकि हमारा प्राकृत काम–भाव नष्ट नहीं हुआ है। अब शुकदेवजी ने भागवत में रासपंचाध्यायी की कथा का वर्णन करते समय कहीं भी स्पष्ट रूप से राधारानी का नाम नहीं लिया है । जबकि सम्पूर्ण रासपंचाध्यायी 'श्रीराधारानी की लीला' है फिर भी शुकदेवजी ने स्पष्ट रूप से राधा नाम नहीं लिया। एक आचार्य ने उदाहरण देते हुए कहा कि जैसे एक महामूल्यवान हीरे को आप सोने की तिजोरी में रख दो और फिर सोने की तिजोरी को लोहे के बक्से में रख दो तो यदि लोहे का बक्सा बाहर चौराहे में भी पड़ा हो तो लोग ध्यान नहीं देंगे और कहेंगे कि यह लोहे का ही

तो बक्सा है, बेकार की चीज है । लोहे के बक्से में महामूल्यवान हीरा भी रखा है तो भी लोहे के किसी संदूक में है तो लोगों का ध्यान उस पर नहीं जायेगा । इसी तरह रास पंचाध्यायी में शुकदेव जी ने वैसा ही किया है। शुकदेव जी की भाषा इस प्रकार है जैसे उन्होंने कहीं पर राधारानी को आराधिका कह दिया या कहीं वधू शब्द से संबोधित कर दिया । कहीं किसी सखी का कोई नाम संकेत भी नहीं किया जबकि राधासुधानिधि में प्राण सखी, प्राण प्रिय सखी आदि सभी सखी भेदों का वर्णन किया गया है कि प्राण सखी कौन है ? प्राण सखियों में किंकिरियाँ आतीं हैं, मंजरियाँ आतीं हैं। मंजरी कौन हैं ? जैसे तुलसी के पौधे में छोटी-छोटी मंजरियाँ होती हैं । जब तक वह मंजरी पत्ते का रूप नहीं लेती तब तक वह बहुत शुद्ध होती है और जब पत्ते का रूप ले लेती है तो वह मंजरी नहीं रहती । मंजरी सखी से तात्पर्य है कि जिनकी अवस्था केवल दस से बारह वर्ष की होती है, जिनके न भाव में कोई दूषण है और न ही क्रिया में कोई दूषण है । यहाँ उनकी अवस्था आठ से ग्यारह वर्ष तक कहने का इतना ही तात्पर्य है कि जिस कन्या में आठ से बारह वर्ष तक की अवस्था में जैसी अन्तःकरण की शुद्धि रहती है, उसके बाद नहीं रह पाती क्योंकि फिर यौवन शुरू हो जाता है अतः अवस्था के विकार आने स्वाभाविक हैं । अतः किंकरी कहने का तात्पर्य है कि जैसे एक निर्मल कन्या का शुद्ध भाव होता है, वही शुद्ध भाव किंकरियों का होता है, मंजरियों का होता है। किंकरी से तात्पर्य है कि जिनकी सेवा में सदा राधारानी के प्रति कैंकर्य का भाव रहता है, दास भाव रहता है । श्रीराधासुधानिधि में ऐसे बहुत से श्लोक हैं जिनमें यह स्पष्ट लिखा है कि वे किंकरियाँ, मंजरियाँ अथवा सहचरियाँ श्रीजी के दास्य, श्रीजी की सेवा को छोड़कर साक्षात् श्रीकृष्ण से मिलना भी नहीं चाहतीं। कौन से कृष्ण, **योगीन्द्र दुर्गमगतिर्मधुसूदनोऽपि** – जिनकी गति बड़े-बड़े ब्रह्मा-शंकर आदि के लिए भी दुर्ज्ञेय है, दुर्लभ है, वे श्रीकृष्ण, उनके साथ भी साक्षात् नित्य विहार करने का अवसर मिले तो ये राधारानी की किंकरियाँ, मंजरियाँ, श्रीजी की सेवा छोड़कर साक्षात् कृष्ण मिलन का सुख भी नहीं चाहतीं। तो इस कोटि का त्याग हम लोग सामान्य रूप से सुन रहे हैं इसलिए हमें ये सब बातें बहुत सामान्य लग रहीं हैं किन्तु जरा विचार करो, सम्पूर्ण धर्म की सिद्धि हो जाये, मोक्षादि को ठुकराने की क्षमता प्राप्त हो जाये, उसके बाद भी सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारुप्य और सायुज्य को नहीं छोड़ पाते। किन्तु जिन्होंने कृष्ण-प्राप्ति के सुख को भी दूर से ही, संकल्प में ही नहीं लाया है, संकल्प से ही त्याग कर दिया है, उनके संकल्प में भी कभी नहीं आता कि कृष्ण कभी हमें मिलें, उस भाव की जिनकी उपासना है, वे किंकरियाँ, मंजरियाँ, वे सहचरियाँ और उसी सहचरी भाव से, वही सहचरी श्रीहिताचार्य महाप्रभु, जो साक्षात् श्यामसुंदर की वंशी के अवतार हैं, उन्होंने कलिकाल में और इस सदी में आकर इस रस को प्रकट किया जो अत्यंत ही दुर्लभ है। हम लोग निश्चित रूप से बहुत सौभाग्यशाली हैं। प्रायः लोग कहते हैं कि हमें इस बुरे युग में जन्म मिला। अरे, वह समय कितना बढ़िया होगा जिस समय मीराबाई अवतरित हुई, ये सब रसिक जन अवतरित हुए थे या अन्य महापुरुष अवतरित हुए थे या आचार्य कोटि के महापुरुष अवतरित हुए थे। परन्तु यदि विचार करें तो यह समय सबसे सुन्दर है। आप विचार करिए कि यदि इन महापुरुषों के पूर्व हमें जन्म मिल जाता तो इन्होंने जिस रस का आस्वादन किया, वह रस हमें कहाँ से मिलता किन्तु आज श्रीहितहरिवंश महाप्रभु अवतरित हो चुके हैं, श्रीहरिदासमहाराज अवतरित हो चुके हैं, केलिमाल और हित चतुरासी जैसे ग्रन्थ प्रकट हो चुके हैं, उसके बाद आज हमें इन महापुरुषों के जीवन-चरित्र और इनकी वाणियों के माध्यम से उस परम गोपनीय तत्व के आस्वादन करने का अवसर मिल रहा है। अगर इनके पूर्व जन्म मिल गया होता, यदि आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व जन्म मिल गया होता तो क्या ये सब हमें सुलभ हो सकता था, नहीं हो सकता था किन्तु यह निश्चित रूप से सबसे सुन्दर अवसर है। पाँच सौ वर्ष पहले की बात छोड़िये, सौ वर्ष पहले भी अगर जन्म हो जाता तो क्या हमें श्रीबाबामहाराज की कोटि के महापुरुष का संग मिलता, जो लोग इनके सत्संग का लाभ ले रहे हैं या जो लोग इनकी सेवा का लाभ ले रहे हैं, जो उनकी आज्ञा-पालन कर रहे हैं, क्या वे लोग ये लाभ ले पाते ? ये सामान्य वस्तुयें नहीं हैं, ये अत्यंत असाधारण चीजें हैं। हम लोगों को चूँकि ये सहज प्राप्त हो गयीं हैं, इसलिए हम लोग वास्तविक लाभ नहीं समझ पा रहे हैं । अतः संत-महापुरुषों की कृपा-करुणा प्राप्ति के लिए सत्संगमयी सेवाराधना में सतत संलग्न रहें ...।

अगर तेजस्वी बनना है, माया को जीतना है तो कपड़े बदल लेने से कुछ नहीं होगा, हर समय मन को 'भगवान्' में लगाये रखो।

पूज्य बाबाश्री द्वारा "श्री वृषभानुपुर शतक" का रसामृत प्रवाह

श्री राधा रानी संगीत विद्यालय में
गुरुजनों द्वारा नियमित प्रशिक्षण

श्री माताजी गौशाला बरसाना में बायो गैस CNG संयत्र स्थापना हेतु अदानी टोटल गैस के अभियंताओं द्वारा कार्य का शुभारम्भ

निर्माणाधीन भूसा घर एवं cow-shed

RNI Reference No. 1313397 - Registration No. UP BIL-2017/72945 - Title Code UP BIL-04953
Postal Regd. No. MTR 093/2021-2023
श्री मान मंदिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा Gupta Offset Printers A -125 /1, Wazirpur Industrial Area, New Delhi -52 से मुद्रित एवं मान मंदिर सेवा संस्थान, गह्वर वन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित